॥ ॐ ॥

परमात्मने नमः ॥

नमोवैवस्वताय ब्रह्मविद्याप्रदर्शकाय ॥

अथ ॥

गुरु शिष्य के संवाद द्वारा ॥

कठवल्ली उपनिषद्की ॥

भाषाटीका प्रारभ्यते ॥

श्रीगुरुरुवाच। हे शिष्य! तेरे बोधार्थ पूर्व ईश अरु केन इन दो उपनिषदों की भाषाटीका का स्वबुद्ध्यनुसार किंचित् श्रीशंकराचार्य के भाष्य के आश्रय कहा है। अब पुनः तेरे दृढ़बोधार्थ कठवल्ली उपनिषद्की यथामति भाषाटीका कहते हैं ॥

शिष्य उवाच। हे भगवन्! ‘उपनिषद्’ शब्दका अर्थ क्या है, अरु किसको कहते हैं अरु तिसका अधिकारी कौन है सो आप कृपाकरके कहिये ॥

गुरुरुवाच। हे सौम्य! अब इसका उत्तर सावधान होके श्रवण करो। वास्तव से ‘उपनिषद्’ ब्रह्म आत्माकी अभेदता प्रतिपादक विद्याको कहते हैं। अब उपनिषद् शब्दके व्युत्पत्त्यर्थ को सुनो ‘उपनिषीदति श्रेयोस्यामित्युपनिषत्’ ‘उपनिषद्’ शब्दका प्रयोग “उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मी वावत उपनिषदमब्रूमेति” यह तलवकार शाखीय केनोपनिषद्के चतुर्थ खंडकी श्रुतिप्रमाण से ब्रह्मविद्या में प्रयोग है “षद्” धातु विशरण गति अवसादन (नाश) अर्थ में है। अरु (उप-नि) ये दो अव्ययपूर्वक “षद्” धातु से क्विप् प्रत्यय

होके 'उपनिषद्' शब्द सिद्ध होता है । तिस 'उपनिषद्' शब्द करके कथनीय ग्रन्थ प्रतिपादित ब्रह्मविषया विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या कही जाती है । जे मुमुक्षु देखे सुने अर्थात इसलोक परलोकके विषयोंकी तृष्णा से निवृत्त हुये 'उपनिषद्' शब्दवाच्य विद्याको अर्थात् 'उपनिषद्' शब्द करके बोधित ब्रह्मविद्या को प्राप्त हो निश्चयपूर्वक ब्रह्म आत्मा के अभेदको विचार करते हैं तिनके अविद्यादि संसार के बीज के नाश करने से ब्रह्मविद्या उपनिषद् कही जाती है क्योंकि 'निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते' यह इसही उपनिषद् की तृतीया वल्ली की पन्द्रहवीं ऋचा में के प्रमाण से ब्रह्मविद्या का प्रयोजन संसार की निवृत्तिरूप देखाया है ॥

और मुमुक्षुजनों को समीप निश्चय करके प्राप्त करे परमात्मा को सो कहिये 'उपनिषद्' अर्थात् 'उप' कहते हैं समीपको अरु 'नि' कहते हैं निश्चय वा निरन्तरको अरु "षद्" धातु गत्यर्थक मानी है अरु गतिपदका अर्थ प्राप्ति भी है ताते जो मुमुक्षुओं को समीप अर्थात् अपने आपविषे निश्चयपूर्वक निरन्तर भाव अर्थात् अभेदभावसे ब्रह्मको प्राप्त करे जो विद्या तिसका नाम 'उपनिषद्' है । तथाच । ब्रह्मप्राप्तो विरजोभूद्विमृत्युः । ऐसे आगे इसही उपनिषद् की छठी वल्ली के अन्त में कहेंगे ॥

और स्वर्गादिलोककी प्राप्तिके साधनत्व करके अरु गर्भवास जन्म जरादि उपद्रव समूह जो देहान्त में वारंवार प्रवृत्त होते हैं उनके नाशकत्व करके अर्थात् उनको शिथिलता प्राप्तकरने से अग्निविद्या भी 'उपनिषद्' करके कही जाती है सो भी आगे 'स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त' इत्यादि स्पष्ट कहेंगे ॥

शंका ॥ हे गुरो ! उपनिषद् शब्दकरके पढ़े जानेवाले ग्रन्थ को भी कहतेहैं क्योंकि मैं 'उपनिषद्' पढ़ताहों मैं 'उपनिषद्'

पढ़ाताहूं मैं ‹ उपनिषद् › सुनताहौं मैं ‹ उपनिषद् › लिखता हौं इत्यादि व्यापार लोकविषे प्रसिद्ध है ॥

उ० ॥ हे शिष्य ! तेरा कहना ठीक है परन्तु विशरणादि । धात्वर्थ केवल ग्रन्थमात्रमें ही बनता नहीं किन्तु ग्रन्थ प्रतिपादित विद्यामें बनता है । अरु ग्रन्थका प्रयोजन भी विद्याही है इससे ग्रन्थमें भी ‹उपनिषद्› पद उपपन्नहै ‘ जैसे चिकित्सा’ (वैद्यक) शास्त्रमें । आयुर्वै घृत । आयुष्य तो घृत है ऐसा कहा है ‘ तैसे ’ इस कारणसे मुख्य वृत्तिकरके ब्रह्मविद्यामें ही उपनिषद् ये शब्द वर्त्तता है ॥

हे सौम्य ! दृष्ट श्रुत अर्थात् दृष्ट कहिये प्रत्यक्ष इस लोकके अरु श्रुत कहिये परोक्ष परलोकके जे उत्तम मध्यम विषयभोग्य हैं तिनसे अशेष वैराग्यवान् अरु मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छावाला) पुरुष है सो उपनिषद् विद्याका अधिकारी है अरु विद्याका वेद्य विषय अर्थात् उपनिषद् विद्याकरके जानने योग्य परमात्माहीहै॥

विद्याको प्रयोजनके साध्य साधन लक्षण सम्बन्ध है अर्थात् मुमुक्षुका जो अशेष अविद्यानिवृत्ति अरु ब्रह्म साक्षात्कार प्राप्तिरूप प्रयोजन है तिस विषयमें उपनिषद्विद्या साधन है अरु उक्त प्रयोजन साध्य है । इसको साध्य साधन सम्बन्ध अरु प्रयोजन अनुबन्ध कहते हैं ॥

भगवान् वैवस्वत (यम) अरु नचिकेता के संवादरूप जो यह आख्यायिका है सो उपनिषद् नामक ब्रह्मविद्याकी प्रशंसार्थ है ॥ ॐ तत्सत् ब्रह्म ॥

चिह्नसूचना ॥

" " इस चिह्नान्तर भावार्थ में मूल श्रुति ॥

' ' इस चिह्नान्तर अर्थ में इसही उपनिषद् के पद ॥

“ ” इस चिह्नान्तर अन्य श्रुति के वाक्य ॥

[ ] इस चिह्नान्तर अक्षरार्थ ॥

( ) इस चिह्नान्तर अक्षरार्थ में सम्बन्धार्थ पद ॥

« » इस चिह्नान्तर भावार्थ में पर्य्याय पद ॥

‹ › इस चिह्नान्तर दृष्टान्त ॥

ॐ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य्यं करवावहै ॥
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॐ शान्तिः ३ ॥

कठवल्ली उपनिषद्

ॐ। उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्व्ववेदसन् ददौ ॥
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस १ ॥

श्रीगुरुरुवाच। हे सौम्य ! "उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्व्ववेदसन् ददौ " [वाजश्रवाका पुत्र निश्चय करके कामनावाला सर्व धन देता भया] अर्थात् 'वाज' कहते हैं अन्नको तिसके दान विशेषके निमित्तसे 'श्रव' कहिये यश है जिसका सो कहिये 'वाजश्रवा' तिसका जो पुत्र सो कहिये 'वाजश्रवसः' ऐसा जो वाजश्रवानाम ऋषीश्वर का पुत्र उद्दालकनामा ऋषि सो अपनी वृद्धाऽवस्थामें धनकी बाहुल्यता के हेतुसे सर्वयज्ञशिरोमणि विश्वजित्नामा यज्ञ कि जिसबिषे जो कुछ दान करनेकी इच्छा होय सोई दियाजाता है अरु तिसके पुण्यप्रभाव से यजमान को स्वर्गादि वाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है तिस यज्ञके करने की निश्चयपूर्वक कामना करताभया। अरु तिस यज्ञके आरम्भ के पूर्व अपने द्रव्यमेंसे स्त्री पुत्रादिकों का विभागकर उत्तम २ पदार्थ उनको दे अवशेष रहा जो अपने भागका अनुत्तम वृद्ध गौ आदि द्रव्य तिस द्रव्यके दानार्थ विश्वजित्नाम यज्ञका आरम्भ करता भया। अरु तिस यज्ञकी दक्षिणामें ऋत्विजादि ब्राह्मणोंको अपना सर्वधन देताभया। हे सौम्य ! "तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस " [तिसका ही नचिकेता नाम पुत्र था] अर्थात् तिस उद्दालक नाम यजमानका ही एक नचिकेता नाम करके पुत्र रहा १ ॥

तꣳ ह कुमारꣳ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु
श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत २ ॥

हे सौम्य ! "तꣳ ह कुमारꣳ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश" [तिसकी कुमारावस्था होतसन्ते भी श्रद्धा प्रवेश करती भई (जब) दक्षिणा देने के अर्थ गौओं को समीप ल्यायदिया (तब)] अर्थात् सो नचिकेता प्रथम अवस्था में कि जिस अवस्था में प्रजोत्पादनशक्ति उदय होती नहीं उस बालक अवस्था में ही उसको अपने पिता के हितमें श्रद्धा उदय होतीभई अर्थात् आस्तिकी बुद्धि कि पिता सर्वसे ज्येष्ठ श्रेष्ठ सर्वप्रकार पूजनीय है ताते सत्पुत्रको पिताका हित अवश्य कर्त्तव्य है ऐसी जो श्रद्धा सो उदय होती भई ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् ! उस बालक नचिकेताको किस समय श्रद्धा उदय होती भई ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य ! जिससमय उसके पिताने ऋत्विज् अर्थात् यज्ञमें होता (हवन करनेवाले) आदि ब्राह्मणों को दक्षिणा के अर्थ ल्यायके यथा पात्राधिकारसे गौआदि द्रव्य दिया तिसको ले के अपने २ स्थानको जाते जे ब्राह्मण तिनको अरु गौआदि दानद्रव्यको अवलोकन किया तब पिताके हित में आस्तिक बुद्धिमान् जो नचिकेता "सोऽमन्यत" [सो विचार करता भया] ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! वह बालक नचिकेता पिताके हित में आस्तिकी बुद्धि (श्रद्धा) सम्पन्न होय क्या अवलोकन करके क्या विचारता भया ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! उस श्रद्धासम्पन्न बालक नचिकेता के पिता उद्दालक ऋषिने विश्वजित् यज्ञकी दक्षिणा में जो गौ आदि दान दिया सो द्रव्य दान देनेयोग्य न था तिसको देखके नचिकेता विचार करताभया ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! वह उद्दालकऋषि तो सर्व वेदशास्त्र विद्याकरके सम्पन्न था तब उसने अपने यज्ञकी दक्षिणा में ऐसा निषिद्ध द्रव्य क्यों दिया ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! वह उद्दालकऋषि सर्व-विद्यासम्पन्न त्रिकालज्ञ रहा अरु नचिकेता अग्निका अवतार रहा ताते उद्दालकने पूर्वही भविष्यत्को विचारा कि मुझे इस नचिकेताको मृत्युके अर्थ देना है अरु मृत्यु नचिकेता के संवाद

द्वारा वेदकी एक शाखा और उदय होनी है एतदर्थ द्रव्यादि निकृष्ट सामग्री एकत्रकर यज्ञका आरम्भ किया अरु दक्षिणार्थ सोई द्रव्य ब्राह्मणोंको दिया तब सो नचिकेता उन गौओं को देख श्रद्धासम्पन्न होय विचार करताभया २ ॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः ।
आनन्दानाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ३ ॥

हे सौम्य ! जिन गौओंको देख नचिकेता श्रद्धासम्पन्न होय विचार करताभया वे कैसी थीं "पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः" [जलपानकी शक्ति रहित तृण खाने की शक्ति रहित दुग्ध देने से रहित गर्भधारण में असमर्थ] अर्थात् उन गौओं ने जो जलपान करलियाहै सोई करलियाहै आगे उसके जलपानकी आशा नहीं अरु जो उन्होंने तृणादि भक्षण किया है सोई कियाहै आगे उसके तृण खानेकी भी आशा नहीं अरु उन्होंने जो कुछ दूध दिया है सोई दियाहै आगे दूध देने की भी आशा नहीं अरु वे धेनु इन्द्रियों की शक्तिसे रहित हैं ताते आगे को सन्तान उत्पन्न करने कीभी सामर्थ्य नहीं । हे सौम्य ! इस प्रकार की वृद्धा निष्फला गौओं को नचिकेताने देखा तब विचार करताभया कि इस प्रकार की वृद्धा निष्फला गौ पिताने ऋत्विजादि ब्राह्मणों को दियाहै सो यह दान श्रेष्ठ नहीं क्योंकि ऐसे दान करनेसे "आनन्दानाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्" [तिनको देता भया सो आनन्द से रहित नामवाले जेलोकहैं तिनके ताईं जाताहै] अर्थात् नहीं है आनन्द जिस लोक वा शरीरमें ऐसे जे असुखनामक लोक वा शरीर तिनविषे सो यजमान जोकि ऐसा निकृष्ट दान करता है सो शरीरत्यागानन्तर जाता है ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार निकृष्टदान के निकृष्ट फलको विचार वह नचिकेता अपने पिता

के हित में पुनः विचार करताभया कि इस यज्ञके निमित्त से पिताको अपने पुत्रकी विद्यमानतामें अनिष्टफलकी प्राप्ति होनी योग्य नहीं अरु यह जो वृद्ध गौआदिक निकृष्ट दानहै तिसका फल स्वर्गादि उत्तम लोक न होके असुख लोककी प्राप्ति है ताते ऐसे दान से इस यज्ञका फल उत्तम न होगा क्योंकि सर्व्व-कर्मों की साफल्यता में ब्रह्मरूप ब्राह्मणोंकी प्रसन्नताही मुख्य कारणहै सो ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता ऐसे निकृष्ट दान देनेसे होती नहीं अब क्या उपाय करिये कि जिससे ब्राह्मण प्रसन्न होय अरु पिताका यज्ञ सुफल होय, अपने पास द्रव्य नहीं जो ब्राह्मणोंको दानकर प्रसन्न करें अरु जो माता से मांगें तो वह भी मुझको बालक जानके न देगी अब क्या करिये इसप्रकार विचार करत सन्ते पुनः विचार किया कि इन ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता के अर्थ एक उपाय यह है कि मुझको पिता किसी ब्राह्मणके अर्थ दान देवै तो मैं उस ब्राह्मण की सर्व प्रकार सेवा कर प्रसन्न करों तब उसके आशीर्वाद से पिता का यज्ञ उत्तमफलका दाता होगा अरु यह उपाय मुझ से बनभी आवेगा ताते अब पिताके पास चलके इसशरीरके दाननिमित्त उससे निवेदन करें। इसप्रकार नचिकेता अपने चित्तमें दृढ़ विचारकर पिताके समीप यज्ञशाला में कि जहां वह ऋत्विजादि ब्राह्मणोंको दक्षिणा देरहाथा, जाय पिताके सम्मुख खड़ा हो हाथ जोड़ प्रार्थना करताभया ३ ॥

स होवाच पितरं तत कस्मै मान्दास्यसीति । द्वितीयं तृतीयन्तꣳहोवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ४ ॥

हे सौम्य ! पूर्वोक्तप्रकार विचारके दृढ़निश्चयकर पिताके हित में उत्पन्नभई है श्रद्धा जिसको ऐसा जो बालकवय नचि-केता "स होवाच पितरं तात कस्मै मान्दास्यसीति ? [सो पिता से स्पष्ट कहता भया हे तात ! किसके अर्थ मेरे को

देवोगे] सो पिता से हाथ जोड़ स्पष्ट कहताभया कि हे तात ! किसी ऋत्विजादि ब्राह्मण को दक्षिणाके अर्थ मुझको देवोगे जो किसी के अर्थ देनेकी इच्छा होय तो मुझपुत्रको भी प्रदान कीजिये मैं आपकी आज्ञा को कदापि उल्लंघन न करूंगा। हे सौम्य ! जब नचिकेताने अपने दानार्थ मध्य सभा में पिता से निवेदन किया तब वो उद्दालक पिता उस अपने बालक पुत्र की अतिउदारवाणी श्रवणकर उसका मुख अवलोकन करतसन्ते विचार करने लगा कि इस बालक पुत्रने मेरे हितार्थ कैसी उदारवाणी कही है जो मेरे हित में अपना शरीर भी अर्पण करने को उद्यत है ताते ऐसी उदारवाणी के कहनेवाले पुत्र दुर्लभ हैं अरु जो कदापि मैं इसको दान करौं तो यह दान सर्वोत्तम है आगे किसी ने भी ऐसा दान दिया नहीं अरु इसके दान करने से जगत् विषे मेरी शोभा अरु यश भी बहुत होगा तथापि ऐसे सुशील धर्मात्मा बालक पुत्र का दान करना योग्य नहीं क्योंकि फेर ऐसा पुत्र हम कहां पावेंगे। हे सौम्य ! इस प्रकार नचिकेता के वाक्य का विचार उद्दालक ऋषि करताही है कि " द्वितीयं " [दूसरीबार] नचिकेता वोही वाक्य कहता भया कि हे पिताजी ! किसी ब्राह्मण को दक्षिणार्थ मुझे देना होय तो निश्शङ्कता से देके अपने कार्य्य को सिद्ध कीजिये मैं आपकी आज्ञा में हूं। हे सौम्य ! इस प्रकार जब दूसरी बार नचिकेता ने पिता से कहा तब पिता उसके वाक्यको श्रवणकर किंचित् काल तूष्णींरहा तिसही अवसर में " तृतीयं " [तीसरी बार] भी नचिकेताने वोही वाक्य कहा कि हे पिताजी ! मुझे किसको देवोगे इसप्रकार उस बालकस्वभाव पुत्रने वारंवार कहा तब तिसको श्रवण कर क्रोधाविष्टचित्त " तꣳहोवाच मृत्यवे त्वा ददामीति " [सो पिता स्पष्ट कहता भया मृत्युके अर्थ तुझको देताहौं] अर्थात् सो उद्दालक पिता अपने नचिकेता बालक पुत्रसे प्रकट कहता भया कि हे नचिकेता ! तुझ सरीखे

हठी बालक को किसको देवैंगे मृत्यु जो वैवस्वत यमराज है तिसके अर्थ देवैंगे ॥ ४ ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार जब उद्दालक ने क्रोधवश होय अपने पुत्र नचिकेता से कहा तब वो नचिकेता अपने पिता का वाक्य श्रवणकर एकान्त आश्रमपर जाय पुनः विचार करताभया कि पिता ने जो कहा कि तुझे मृत्यु को देवैंगे सो क्या विचार के कहा है हमने तो जो कहा सो उसके हितार्थही कहाथा जो वो हमें किसी ब्राह्मण के अर्थ अर्पण करते तो मैं उस ब्राह्मणको सेवासे प्रसन्नकर पिताका स्वर्ग सिद्ध करता यह वाक्य उसने क्या कहा जो तुझे मृत्युको देवैंगे भला अब जो उसने कहा है श्रेष्ठही कहा है ॥

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः । किꣳ स्विद्यमस्य कर्त्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ५ ॥

हे सौम्य ! उक्तप्रकार विचारके पुनः वो नचिकेता विचार करता भया कि "बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः" [बहुतोंके मध्यमें प्रथम भया जाताहौं बहुतों के मध्यमें मध्यम भया जाताहौं] अर्थात् बहुत शिष्य किंवा पुत्र तिनके मध्य मैं उत्तमताको प्राप्त होताहौं क्यों जो पिताके हितार्थ मैं अपने शरीर को अर्पण करता हौं ताते बहुत से शिष्य अरु पुत्रों के मध्य मैं उत्तमताको प्राप्त होताहौं अरु बहुत से शिष्यों, पुत्रों के मध्य मैं मध्यमताको प्राप्त होताहौं क्योंकि जो शिष्य वा पुत्र अपने गुरु वा पिताकी आज्ञानुसार कार्य करते हैं सो मध्यम होतेहैं सो मैंभी पिताकी आज्ञानुसारही कार्य्य करूंगा ताते मैं मध्यमताको प्राप्त होताहौं अरु मैंने पिताकी आज्ञा को भंग नहीं किया ताते मैं अधम भावको प्राप्त भया नहीं न कदापि होना है सो मुझ उत्तम मध्यम गुणविशिष्ट पुत्रको पिता ने कहा कि तुझे मृत्युको देताहौं सो क्या विचारके कहा औ भला "किꣳ स्विद्यमस्य कर्त्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति" [अब

मुझसे यमका प्रयोजन करेंगे सो क्या होगा] अर्थात् उस यमराज (मृत्यु) का हमसे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा अरु हमारा क्या प्रयोजन उससे सिद्ध होगा ताते विनाही प्रयोजन क्रोधवशात् पिताने कहा है । तथापि अब जो पिताने कहा है श्रेष्ठही कहा है अब जिसप्रकार पिताकी प्रतिज्ञारूपी यज्ञ सिद्ध होय सोई अपनेको कर्त्तव्य योग्य है ॥ ५ ॥ हे सौम्य ! इस प्रकार नचिकेता तो अपने स्थानपर विचारकर पिताकी आज्ञा ले यमालयकी यात्रा को निश्चय करताभया अरु तिसही काल में वहां यज्ञशाला में उसका पिता उद्दालक जब दानक्रिया से निवृत्त भया अरु क्रोधावेश शान्तभया तब पुत्रप्रति कहेहुये अपने वाक्यका विचारकर पश्चात्ताप करनेलगा कि मैंने उस अपने धर्मगुणविशिष्ट पुत्रको यह क्या कहा जो तुझे मृत्युको देते हैं अब वो आज्ञाकारी बालक पुत्र सोई करैगा जोकि मैंने कहा है हा ! बड़ाकष्ट है अब किसप्रकार इस धर्माविष्ट बालक को यमालय की यात्रासे निवारण करें जो कदापि अब उससे उस यात्राका निषेधभी करैं तथापि वो मुझको मोहवश जानके न फिरेगा क्योंकि वो सत्यव्रत है हा ! अब क्या करिये हे सौम्य ! इत्यादि प्रकार उस यज्ञशाला में अपने कहे वाक्य का पश्चात्ताप करता उद्दालक विलाप करनेलगा तब वह नचिकेता अपने पिता को मोहवश विलाप करता जान आप अपने स्थानसे उठ पिता के समीप जाय प्रणामकर यमालय की यात्रा के अर्थ आज्ञा मांगता भया तब उद्दालकने अपने धर्मात्मा बालक पुत्र को देखके कहा कि हे वत्स ! हे तात ! हे प्रियदर्शन ! अब हम तुझको यमालय जानेकी आज्ञा कैसे करैं तेरा जाना अरु मेरा मरण साथही जानो अरु हे तात ! मैंने जो तुझको मृत्यु के अर्थ देनाकहाथा सो क्रोधवश अविचारित था ताते उस मेरे वाक्यका विचार मत करो। हे सौम्य ! इस प्रकार मोहवशात् उद्दालक ने कहा तब तिसके समक्ष खड़ा जो नचिकेता सो पिताका शोक

निवारणकर आज्ञाले यमालयकी यात्रा करता भया तहां प्रथम उसने पिताके शोकनिवारणार्थ जो वाक्य कहे सो श्रवण करो ॥

अनुपश्य यथा पूर्व्वे प्रतिपश्य तथाऽपरे । सस्य-मिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ६ ॥

हे सौम्य ! नचिकेता अपने पिता से कहता है कि हे पिता ! "। अनुपश्य यथा पूर्व्वे प्रतिपश्य तथाऽपरे ।" [पिछलोंको देखो जैसे पूर्वके (ज्येष्ठ श्रेष्ठ भये) «अरु» तैसे अन्योंके प्रति देखो] अर्थात् जिस प्रकार आपके पिता पितामहादि ज्येष्ठ श्रेष्ठ धर्मात्मा सत्यवादी पूर्व अपने वाक्यों को सत्य करते थे तिनको विचारिये अरु तिनके अनुसार आपभी अपनी वाणी को सत्य करिये अरु अन्य सत्यवादियों को देखिये «जैसे राजा दशरथ ने अपने प्राणसे भी प्यारे पुत्रको अपनी प्रतिज्ञा के सत्यकरणार्थ वन जाने की आज्ञा किया अरु पुत्रके वियोग में अपने प्राणको भी त्यागा परन्तु अपने वाक्यको न त्यागा अरु तिस के पुत्र भगवान् रामजीने भी अपने क्लेशोंको न विचारके पिता की प्रतिज्ञा पालन किया» हे पिताजी ! तैसेही आपभी अपने कहे वाक्यपर आरूढ़ हो मुझसे यमालय की यात्रार्थ आज्ञा करिये तिसको पूर्ण करके मैं भी संसारमें शोभाको प्राप्त होऊं। हे पिताजी ! « पूर्व एक दधीचि नाम ऋषीश्वर ने अपनी प्रतिज्ञा के पालनार्थ अपने मस्तक को कटवाया परन्तु अपनी प्रतिज्ञा का त्याग न किया यह सर्व सत्यवादी महात्माओं की कीर्त्तिप्रकाशक कथा आपसेही मैंने श्रवण किया है तिन सर्व सत्यवादियों को देख तिनके अनुसार आप भी अपनी वाणी को सत्य करिये » हे पिताजी ! मेरा अरु आपका एकत्र होना संयोग पायके भया है तैसे वियोग भी होजायगा इन अनवस्थ शरीरों विषे स्नेह वृथा है एतदर्थ विवेकी पुरुष सराँयके बसेरेवत् संसार विषे मोहको त्यागके उदासीन रहते हैं । हे पिताजी !

जैसे तीर्थों में यात्रीगण अकस्मात् एकत्र हो आवते हैं तैसे ही बिछुड़ भी जाते हैं तद्वत्ही मेरा अरु आपका संस्कारवश एकत्र होना भया है कालपाय के बिछुड़ भी जावैंगे ताते इस असत्यलोक में अपनी वाणीको अन्यथा करनेमें सिवाय अपकीर्त्ति के और कुछ भी लाभ नहीं हे पिताजी ! "। सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ।" [मनुष्य धान्यके वृक्षवत् पकता है पुनः धान्य के वृक्षवत् उपजता है] अर्थात् ‹ जैसे अन्नके वृक्ष पकके कटते हैं › तैसेही यह मरणधर्मा मनुष्य भी बाल युवा वृद्ध जीर्ण भावको प्राप्त होय मृत्युके वश होते हैं पुनः ‹ अन्नके दानेवत् अपने कर्मों के प्रेरे नीच ऊंच योनियोंमें उत्पन्न भी होते हैं › अरु ‹ जैसे अन्न के दाने बोये जाते हैं फेर कालपायके काटेभी जातेहैं एकत्र भी रहते हैं पुनः कालपाय के वो दाने बिछुड़ेहुये पूर्व के पश्चिम को पश्चिमके पूर्व को चलेजाते हैं ये सदा एकत्र रहते नहीं ›। हे पिताजी ! तैसेही यह सर्वजीव कालपायाके प्रारब्धोंके प्रेरेहुये एकत्र हो आवते हैं पुनः तैसेही बिछुड़ भी जाते हैं इनका यही स्वभाव है तब फेर इस असत्य अनवस्थ नाशवान् शरीर बिषे मोहवशात् आस्था करने से अरु अपनी प्रतिज्ञाको असत्य करने से क्या कोई अजर अमर होताहै कोई भी होता नहीं। हे पिताजी ! सत्पुरुषों करके जो अपनी प्रतिज्ञाका त्याग है सोई उनका मरण है अरु जो प्रतिज्ञाका पालन करना है सोई बुद्धिमानों का जीवना है यह सर्व आपको विदित है। ताते हे पिताजी ! पूर्वके वृद्धोंके आचारको विचार इस मोहको त्याग मुझे यमालय की आज्ञा दे अपनी प्रतिज्ञाका पालन करिये ॥ ६ ॥ हे सौम्य ! यहां जब सत्यवादी उद्दालकऋषिने अपने पुत्रसे कहा कि मैं तुझे मृत्युको देता हौं उसही काल भविष्यत् के ज्ञाता मृत्युभगवान् ने अपने स्थानपर विचार किया कि अपने पिता की आज्ञा मानके वो बालक ब्रह्मचारी नचिकेता यहां आवेगा

अरु मुझसे तीन वरदान भी मांगेगा ताते प्रथम उसकी जि-
ज्ञासा देखने के अर्थ हम यहां से ब्रह्मलोकको जावें ऐसा नि-
श्चयकर अपनी स्त्री सों कहके आप ब्रह्मलोकको जातेभये।
अरु यहां जब नाचिकेता ने अपने पिताके शोकनिवारणार्थ
वचन कहे तब कुछ सावधान होय उद्दालकने अपने पुत्रको
आज्ञा दिया तब पिता की आज्ञा होते ही वो पितृहितकामी
नचिकेता पिता को प्रणामकर सर्वसभा के देखतेही योगकला
से अन्तर्द्धान होय मृत्यु के भवनद्वारपर जाय खड़ारहा तब
मृत्युकी स्त्रीने उस तेजस्वी बालक ब्रह्मचारीको अपने द्वारपर
देख कुछ जल फलादिले द्वारपर आय नचिकेता से कहा कि
हे ब्रह्मचारी! आप हमारे द्वारपर अतिथि आयेहो ताते इस जल
फल को अंगीकार करिये तब नचिकेताने कहा कि हे देवि! मैं
सन्तुष्ट हूं अभी मैं जल फलादि न लूंगा मुझको पिताने किसी
प्रयोजनार्थ मृत्युके पास भेजा है जब वो मेरा प्रयोजन सिद्ध
होगा तिसके पश्चात् मैं जल फलादि ग्रहण करौंगा अब आप
बैठिये। हे सौम्य! जब इसप्रकार नचिकेता ने उस देवी से
कहा तब वो देवी कहतीभई कि हे ब्रह्मचारी! जिसके साथ तुम
को प्रयोजन है सो मृत्यु कहीं को गया है तीन दिवस में आवेगा
इतना कह वो देवी अपने भवन में जातीभई अरु नचिकेता
विनाही जल फलादिकों के लिये तीन दिवस मृत्युके द्वारपर
खड़ारहा जब तीन दिवस बीते तब मृत्यु भगवान् ब्रह्मलोकसे
आय उस बालक ब्रह्मचारी को अपने द्वार पर देखते भवन में
पधारे तब उनकी स्त्री कहतीभई कि हे भगवन्! तीन दिवससे
बालक ब्रह्मचारी आपके द्वारपर खड़ा है उसने जल फलादि
कुछभी नहीं लिया ताते आप प्रथम उसको शान्त करिये वो
अतिथि कैसा है मानो॥

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्। तस्यैता-
ꣳशान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ७॥

हे भगवन् ! "वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्" [साक्षात् वैश्वानर (अग्नि) ही अतिथि ब्राह्मणभया गृहों में प्रवेशकरता है] अर्थात् साक्षात् वैश्वानर नाम अग्निही यह अतिथि ब्राह्मणरूपसे चतुर्दशभुवन में प्रवेशकर सर्वको दाह करता होय ऐसा इसका तेज दृष्ट आवता है ताते हे भगवन् ! "तस्यैताᳬशान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्" [तिसकी इन जलफलादि पूजा सामग्री से शान्ति करते हैं हे वैवस्वत ! जलको लीजिये] अर्थात् अतिथिरूप वैश्वानर जो पांच अग्नि करके युक्त आया है तिस अग्निकी शान्तिके अर्थ इतनी अर्घ्य पाद्य आसन जल फल दाक्षिणा आदि सामग्री जो इस अतिथिरूप अग्निको शान्ति करनेवाली है साथ ले हे भगवन् ! हे वैवस्वत ! आप शान्त स्वभाव होय उस अतिथि के समीप जाय उदकादि सामग्री से उसका पूजनकर सर्व प्रकार उसको शान्तात्मा करिये ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! इस प्रकार जब मृत्युकी स्त्रीने अतिथिरूप अग्नि के शान्त करने के अर्थ प्रार्थना किया तब सो मृत्यु भगवान् कहते भये ॥

आशाप्रतीक्षे संगतᳬ सूनृताञ्चेष्टापूर्त्ते पुत्रपशूᳬश्च सर्व्वानेतद् वृंक्ते ॥ पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ८ ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे देवि ! मैं भी उस अतिथि ब्रह्मचारी तेजस्वी बालक ब्राह्मण को अपने द्वारपर देखता आया हौं वो पूजन करनेही योग्य है हे देवि ! जो गृही पुरुष अपने गृह आये अतिथि का आतिथ्यादिद्वारा सेवन करते नहीं तिनको प्रत्यवाय होता है अरु संचित पुण्यकर्म का नाश होता है अरु "आशाप्रतीक्षे संगतᳬसूनृताञ्चेष्टापूर्त्ते पुत्रपशूᳬश्च सर्व्वानेतद् वृंक्ते" [आशा प्रतीक्षा संगत सूनृत इष्टा पूर्त्ता पुत्र पशू इन सर्वका नाश होता है] अर्थात् अपने को इष्टवस्तु जो अनुभव

किया है तिसकी प्राप्ति के अर्थ प्रार्थना सो आशा अरु अननु-भूत स्वर्गादिकोंकी प्राप्तिके अर्थ प्रतिक्षण अनुसंधान सो प्र-तीक्षा अरु सत्संगका जो सर्वोत्तमफल सो अरु शरीरादिकों के सुख अरु यज्ञ अग्निहोत्रादि अरु वापी कूप तड़ाग आरामादि यह इष्टापूर्त्तादि कर्म सो अरु इनके फल अरु पुत्रादि सन्तति अरु पशुआदि विभूति अरु यशकीर्त्यादि यह सर्व विनाशको प्राप्त होते हैं । सो किसके " पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे " [जिस अल्पबुद्धिवाले पुरुष के गृहविषे विनाही भोजन किये अतिथि ब्राह्मण वास करताहै तिसके] अर्थात् जिस अशास्त्रज्ञ अल्पबुद्धि अविवेकी किंवा प्रमादवान् कृपण गृहस्थके गृह प्राप्त भये जे अतिथि ब्राह्मण सो विनाहीं जल फल पूजनादि सत्कार के पाये निवास करते हैं अथवा फिर जाते हैं तिनके । अर्थात् जिस गृहस्थ के घर से अतिथि ब्राह्मण भोजनादि सत्कारको पावते नहीं उनके उक्त सर्व धर्म कर्म यश विभूत्यादि नष्ट होजातेहैं अरु अकरण प्रत्यवाय उस को प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे देवि ! श्रुति की आज्ञाहै कि " अति थिदेवोभव " अतिथि देवतावत् पूजनीय है ताते उदकादि पूजासामग्री लावो मैं उस अतिथिका पूजनकर उसको शान्तात्मा करौं ॥

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्न-मस्यः । नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति-त्रीन्वरान् वृणीष्व ९ ॥

हे सौम्य ! उक्तप्रकार मृत्यु भगवान् अतिथि ब्राह्मण के आतिथ्यादि सत्कार न करने से जो दोष है सो अपनी स्त्री से प्रकट कहके पूजन सामग्री ले नचिकेताके समीप आय अर्घ्य पाद्यादि पूजनकर अतिशान्तता से यह वचन कहते भये ॥ मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः ! " तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे

ऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः" [हे ब्रह्मन् ! तू नमस्कार करने योग्य अतिथिभया भोजन को न करता हुआ मेरे गृहविषे तीनरात्रि पर्यन्त जो वास करताभया] अर्थात् हे ब्रह्मचारी ब्राह्मण ! तू परम पूजनीय भया आतिथि जलफलादि कुछ भी भोजन न करके उपवास करत सन्ते मेरे गृह बिषे तीन रात्रि दिवस आपने निवास किया है ताते आपको मेरे ऊपर क्रोध नहीं करना सर्वप्रकार क्षमा करनी हे ब्रह्मन् ! "नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रतित्रीन् वरान् वृणीष्व" [तेरेको नमस्कार रहो हे ब्रह्मन् ! मेरा कल्याण रहो तिसके प्रति तीन वरदान मांगो] अर्थात् आप नमस्कार करने योग्यहौ ताते आप को मेरा नमस्कार रहो अरु हे ब्रह्मन् ! आपकी कृपासे मेरेको सर्व प्रकार कुशल रहो हे भगवन् ! आपने मेरे गृह बिषे तीन रात्र उपोषण किया है तिसके बदले में एक २ रात्रिप्रति एक २ वरदान जो आपकी इच्छा होय सो मांग लीजिये ॥ ९ ॥ हे सौम्य ! जब इस प्रकार वैवस्वत भगवान्ने नचिकेता आतिथि की शान्तिके अर्थ पूजनादि आतिथ्यपूर्वक नमस्कार करके तीन वरदान मांगनेकी आज्ञा किया तब वह बालक आतिथि ब्राह्मण नचिकेता अपने हृदय विषे विचार करताभया कि मुझको तो पिताने शाप दियाथा जो ' मृत्यवे त्वा ददामीति ' मृत्यु को तुझे देते हैं । सो मृत्यु तो बड़ा भयानक क्रूर होताहै वह छोटे बड़ेका विचार न करके सर्वको ग्रास करता है अरु उसके द-र्शनमात्रसेही प्राण शरीरसे पयान करते हैं, यह कैसा मृत्यु है यह तो पूजन करताहै नमस्कार करताहै अपराध क्षमा करावता है अरु तीन वरदान देता है ताते यह तो कोई परमदयालु देवता है चन्द्रमावत् सुखदायी इसका दर्शन है अरु अमृत के तुल्य इसका भाषण है जैसे नम्रताके वाक्य यह कहता है तैसे वाक्य मृत्यु तो किसीसे भी कहता नहीं अरु यह देववत् सर्व का प्राणहर्त्ता जो मृत्यु सो वरदान किसको देता है किन्तु

किसीको भी नहीं ताते यह तो कोई परमदयालु देव है अब इसके दर्शन अरु वाक्य के श्रवण से प्रतीत होताहै कि पिताने शाप नहीं दिया किन्तु शापके मिस वरदान दिया है जो ऐसे परमउदार दयालु देवका दर्शनभया है पिताकी कृपा विना ऐसेका समागम मुझे कबथा यह सर्व पिताकाही अनुग्रह है जो ऐसे दयालु देवका समागम भया है अब इसके द्वारा मेरे सर्व मनोरथ सिद्ध होंगे । हे सौम्य ! इसप्रकार विचारके नचिकेता मृत्यु भगवान्से कहता भया ॥

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमोमाभिमृत्यो ॥ त्वत्प्रसृष्टं माऽभिवदेत् प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे १० ॥

नचिकेतोवाच ॥ हे भगवन् ! मुझको मेरे पिता ने आपके पास भेजा है जो आप सर्वके भोक्ता मृत्युहो आपके आगे जैसे मैं खड़ाहौं तैसे कोई भी नहीं ठहरता ताते आप मुझपर दया करतेहो जो पूजन करतेहो नमस्कार करतेहो क्षमा करावते हो अरु वरदान भी देतेहो ताते मुझपर आपका महान् अनुग्रह है । हे भगवन् ! जो आप मुझको वरदान देतेहो तो प्रथम यह दीजिये " शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमोमाभिमृत्यो " [हे मृत्यो ! गौतम (मेरेपिता) का संकल्प शान्त हो मेरेप्रति प्रसन्न मनवाला जैसाथा तैसा क्रोधसे रहित होय] अर्थात् हे भगवन् मृत्यो ! मेरा पिता मेरी ओरसे शान्तसंकल्प होय अर्थात् मेरे पिताको यह शोच न होय जो मेरा पुत्र मृत्यु के यहां गया वा नहीं गया अरु जो गया तो मृत्युने उसको ग्रास किया वा नहीं किया जाने मेरे पुत्रका क्या भया होगा इत्यादि प्रकार मेरे निमित्त के संकल्प विकल्प मेरे पिता के शान्त होयँ अरु मेरे प्रति प्रसन्न मनवाला होय अरु क्रोध के समय से पूर्व जैसाथा तैसाही क्रोधसे रहित मेरे अर्थ शान्त

आत्मा होय सो कब जब " त्वत्सृष्टं माऽभिवदेत् प्रतीत एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे " [तुम करके भेजेहुये मेरे प्रति भाषण करे प्रतीत होय वह तीन वरदान के मध्य प्रथम वर मांगता हौं] अर्थात् हे भगवन् ! यहां आप मेरा पूजन करते हौ अरु वरदान भी देते हौ इससे यह भी प्रतीत होता है जो आप मुझको फेर वहां पिताके पास भेजोगे ताते आप करके भेजा भया मैं वहां जाऊं तब मेरे माता पिता मुझको देख प्रसन्न होय मेरे साथ संभाषण करें विपरीत विचार के क्रोधवान् न होयँ कि यह तो मृत्युको दिया हुआ फिर के आया है ताते यह प्रेत भया है अब इसको ताड़ना करों अथवा मन्त्रादि करके ग्राम से बाहर निकालों वा पृथ्वी में दबादूं इत्यादि प्रकार के रोष मेरे माता पिता को न होयँ प्रीतिपूर्वक भाषण करें अरु लब्धस्मृति प्रतीतवान् होय जो यह मेरा पुत्र नाचिकेताही है यह मृत्यु से विद्या लेके ज्यों का त्यों आयाहै इतने कार्यके अर्थ तीन वरदानों में से प्रथम वरदान के अर्थ मैं प्रार्थना करताहौं तिसको आप पूर्ण करिये ॥ १० ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार जब नाचिकेताने अपने पिताके शोकनिवारणार्थ प्रथम वरदानकी याचना किया तब मृत्यु भगवान् कहतेभये ॥

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः ॥ सुखꣳरात्रीः शयितावीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ११ ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः ! " यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः " [जैसे पूर्वसेही (तेरे पिता का स्नेह) तेरे बिषे है (तैसेही) प्रतीत है अरुणका पुत्र उद्दालक मेरी आज्ञा को पाया] अर्थात् तेरे पिता का स्नेह तेरे बिषे जिस प्रकार पूर्व से है तैसेही अब है अरु तेरे पिताकी तेरे बिषे प्रतीति है कि मेरा पुत्र मृत्यु के यहां गया है हे नचिकेतः !

अरुणका पुत्र उद्दालक तेरा पिता तिसकी बुद्धिको मैंने अन्तर्य्यामिरूपसे यथार्थ कियाहै ताते अब तेरा पिता तेरी ओरसे शान्त संकल्प भयाहै अरु एक और प्रकारसे भी तेरा पिता शान्तात्मा भयाहै जो एकदिवस "सुखꣳ रात्रीः शयितावीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्" [रात्रि को सुखसे विगत रोष सोवता रहा (तब) तुझको मृत्युके मुखसे मुक्त देखताभया] अर्थात् रात्रि के समय तेरा पिता सुख से सोवतारहा तब पिछली रात्रि को एक स्वप्न देखताभया तिस स्वप्नविषे तुझ पुत्र को देखताभया जो मेरा पुत्र नचिकेता मृत्यु के मुख से मुक्त भया आया है अथवा मृत्युके मुख से कहीहुई जो आत्मविद्या तिसकरके जन्म मरणसे मुक्त हुआ आया है ॥ ११ ॥ ताते हे नचिकेतः! तेरी ओर से तेरा पिता शान्तात्मा भयाहै अब उस की ओरसे तूभी शान्तात्मा हो ॥ हे सौम्य! यह कर्मका स्वरूप तुमसे कहाहै जो कर्म करिये तो ऐसा करिये कि जैसा नचिकेता ने किया है कि अपना शरीर भी पिताके हितार्थ अर्पण किया परंतु पिताकी प्रतिज्ञा से फिरा नहीं तब पिताके अनुग्रहसे उस को भगवान् वैवस्वत ऐसे कर्म उपासना ज्ञानकाण्ड त्रयी के ज्ञाता सर्व शिरोमणि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य की प्राप्ति भई ताते यावत्पर्यन्त कर्मका फल अंतःकरणकी शुद्धता न प्राप्त होय तावत् कर्मसे हाथ न उठावना ॥ हे सौम्य! आगे उपासनाका प्रसंग चलेगा जिस उपासना के किये से कर्त्ता पुरुषको स्वर्गलोककी प्राप्ति होतीहै तिस विद्याका प्रसंग दूसरे वरदान में चलेगा ॥ प्र० ॥ हे गुरो! अब उपासनाका प्रसंगभी आप कृपाकरके कहिये कि जैसे मृत्यु भगवान्ने नचिकेता से कहाहै ॥ उ० ॥ हे सौम्य! जब मृत्यु भगवान् से नचिकेताने अपने पिताके शोक निवारणार्थ वरदानकी याचना किया तब मृत्युने कहा कि यह काम तो तेरा मैंने प्रथमही कियाहै अब और जो तेरी इच्छा होय सो मांग तब नचिकेता अग्निकी उपासना के ज्ञानार्थ प्रथम

उस उपासनाका फल स्वर्गलोक तिसकी प्रशंसा करता भया ॥

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति ॥ उभे तीर्त्वाऽशनापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके १२ ॥

नचिकेतोवाच ॥ हे भगवन् ! यज्ञादि कर्मद्वारा जिस अग्नि का आराधन करके यजमान सर्वोत्तम स्वर्गलोकको प्राप्त होतेहैं उस अग्निकी विद्या मुझको दीजिये अरु कैसाहै वह स्वर्गलोक कि जिसको अग्नि के उपासक यजमान प्राप्त होते हैं कि जहां "स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति" [स्वर्गलोक बिषे भय कुछभी नहीं है (अरु) तहां तुमभी नहीं (अरु) जराकरके भयको पावता नहीं] अर्थात् उस स्वर्गलोक में रोगादि निमित्तिक जे शरीरव्याधि के दुःख तिनका भय किंचिन्मात्र भी नहीं अरु तिस स्वर्गलोक में तुम जो मृत्यु सो भी सहसा इस मृत्युलोकवत् नहीं अरु जरावस्था करके भी वहां भयको पावता नहीं अर्थात् स्वर्गलोक में इस लोकवत् जरा मरणादिकोंका भय नहीं किन्तु " उभे तीर्त्वाऽशनापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके " [क्षुधा पिपासा दोनोंको लंघिके शोकसे रहितभया स्वर्गलोक बिषे हर्षको प्राप्त होताहै] अर्थात् क्षुधा पिपासा कहिये भूख प्यास तिन दोनोंसे तर (छूट) के अरु शोक मोहादि मानस दुःखसे रहित अर्थात् जरामरण देहकी ऊर्मी, भूख प्यास प्राणकी ऊर्मी, शोक मोह मनकी ऊर्मी, इन सर्व से छूटके स्वर्गलोक में आनन्द करते प्रसन्न रहते हैं ताते स्वर्गलोक सर्वोत्तम है १२ ॥

स त्वमग्निꣳ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि तꣳ श्रद्दधानाय मह्यम् ॥ स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणोवरेण १३ ॥

हे भगवन् ! इस प्रकार सर्वगुणविशिष्ट जे स्वर्गलोक तिसकी प्राप्ति का साधन " स त्वमग्निꣳ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि तꣳ श्रद्दधानाय मह्यम् " [तिस अग्नि को स्वर्गसाधक आप जानते हौ सो श्रद्धावान् मुझको आप कहिये] अर्थात् तिस स्वर्ग की प्राप्तिका साधक अग्नि को आप भलीप्रकार जानतेहौ सो हे भगवन् ! श्रद्धासम्पन्न जो मैं तिस मुझ विद्यार्थी प्रति तिस विद्या को कृपाकरके कहिये कि जिस अग्नि के सेवन करने से " स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्ते " [स्वर्गलोक को प्राप्तभये अमरभावको प्राप्त होतेहैं] अर्थात् स्वर्गलोक है अन्तमें प्राप्त जिनको ऐसे जे यजमान सो अमरणधर्म अर्थात् देवभावको प्राप्त होते हैं सो हे भगवन् ! " एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण " [तिसको दूसरे वरदान से मांगताहौं] अर्थात् तिस अग्निकी विद्या मुझको दूसरे वरदान करके दीजिये यह मेरी प्रार्थना है ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! जब आप मुझको यहांसे उस मेरेलोक में भेजोगे तब वहां के मनुष्य कर्म उपासना के प्रश्न करनेवाले मेरे पास आवेंगे एतदर्थ भी आप मुझको अग्निविद्या प्रदान कीजिये ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार जब नचिकेता ने दूसरे वरदान करके अग्निविद्याकी याचना किया तब मृत्युभगवान् कहते भये १३ ॥

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् । अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् १४ ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः ! " प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् " [हे नचिकेतः ! तिस स्वर्ग के साधन अग्निको मैं जानताहौं तेरे अर्थ कहताहौं तिसको श्रवण करो] अर्थात् जिस अग्निकी विद्या के अर्थ तेरी प्रार्थना है तिस स्वर्गसाधक अग्निविद्याको मैं भलीप्रकार जानता

अथा तेरे प्रति स्पष्ट कहताहौं, तिस हमारी कही विद्याको एकाग्र मन करके श्रवण करो "। अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतन्निहितं गुहायाम्" [स्वर्गलोकरूप फलकी जे साधन आश्रयरूप गुहाविषे स्थित इसको तू जान] अर्थात् हे नचिकेतः ! अनन्तहैं विषयभोगके सुख जहां ऐसा जो सर्वोत्तम स्वर्गलोक तिसकी प्राप्तिका साधन सर्वाश्रयरूप अग्नि तिस वैश्वानर अग्निकी इस भूताग्निरूपसे उपासना अपने २ अधिकार प्रति करते हैं सो एक दिवसमें प्रातःकाल सायंकाल दो बार यथाविधि पूजनकरते हैं अरु पूजनके मन्त्रोंको देवताआयतन प्रतिष्ठा आदिसहित सर्व के ज्ञानपूर्वक यथाशास्त्र शरीरपातपर्यन्त आराधना करते हैं अरु अन्त में अन्त्येष्टि शरीरका संस्कार (देहदाह) उसही अग्नि से होताहै तब वह यजनकर्त्ता यजमान अर्चिरादि मार्ग से सर्वलोक को प्राप्त होता है। हे नचिकेतः ! वह सर्व का आश्रयभूत अग्नि विराट्रूपसे सर्वत्र स्थित है तहां " सत्रेधाऽऽत्मानं व्याकुरुतेति" इस श्रुति प्रमाण से अग्नि, वायु, सूर्य इन तीनरूप से बाह्य समष्टिभाव को अरु प्राण अपानादि वायु के साथ मिलके जठराग्निरूप से अन्नको पाचन करता अन्तरव्यष्टिभावको इसप्रकार व्यष्टि समष्टि उभयताको प्राप्त होय सर्वजगत् का आश्रयरूप अग्नि है सो सर्वप्राणियों की अन्तःकरणरूप गुफा विषे स्थित है तिसको तू ज्ञातकर १४ ॥

लोकादिमग्निन्तमुवाच तस्मै या इष्टकायावतीर्वा यथा वा। स चापि तत्प्रवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः १५ ॥

हे नचिकेतः ! "लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टकायावतीर्वा यथा वा" [लोकन के आदि अग्नि को तिसके अर्थ कहतेभये जो ईंटा है वा जितनी हैं वा जोप्रकार कही है] अर्थात्

सर्वसृष्टि के पूर्व प्रथम शरीरवान् ताते अग्नि अर्थात् जो सर्व उपाधि से रहित एक समान अग्नि सो ब्राह्मणादि सर्वसृष्टि के पूर्व शरीरवान् प्रजापति आदि अग्नि ब्राह्मण अधिदैवरूप अरु सोई अग्नि, वायु, सूर्य यह तीन अधिभूतरूप अरु सोई अन्तरप्रविष्ट होयके अन्नादिकों का भोक्ता वैश्वानररूप इस प्रकार एक अग्नि आधिदैव, अधिभूत, अध्यात्म तीनों स्वरूप से सर्व जगत् का निर्वाहक आश्रय विराडात्मारूप से सुशोभित है । तिस सर्वात्म अग्निविद्या के ज्ञानार्थ नचिकेताने मृत्यु से द्वितीय वरदान के अर्थ याचना किया तब तिस अग्निविद्या को नचिकेता के अर्थ मृत्यु भगवान् कहतेभये तहां ईंटों का बनावना जितना बनावना अरु कुण्ड मेखला समय द्रव्य मन्त्र छन्द ऋषि देवता आयतन प्रतिष्ठा वा स्रुवा शुचि प्रणीता प्रोक्षणी समिधा कर्त्ता करणादि सामग्री विधिविधान है सो सर्व कहतेभये हे सौम्य ! जब सर्वसामग्री सहित अग्निविद्या मृत्यु भगवान् ने नाचिकेता प्रति उपदेश किया तब परम विवेकी शुद्धचित्त उत्तमाधिकारी जो नचिकेता ।' स चापि तत्प्रवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ' [सो नचिकेता भी जो मृत्यु ने कहा था तिसको मृत्यु के प्रति कहताभया तिस करके तुष्टभये मृत्यु फेर भी कहते भये] अर्थात् सो नाचिकेता भी उस अग्निविद्या को जो कि मृत्यु भगवान् ने उपदेश किया था तिसको जैसा श्रवण किया तैसेही विधिविधान सहित ज्यों का त्यों मृत्यु भगवान् प्रति कह सुनाया तब वो मृत्यु बालक नचिकेता के मुख से अनुभव सहित यथार्थ अग्निविद्या को श्रवण करके अत्यन्त प्रसन्न भये अरु विचारते भये जो यह शुद्धपात्र ब्रह्मचारी हम देवताओं से भी श्रेष्ठ है इसने मनन करनेका काल पाये विनाही अनुभव सहित ज्योंका त्यों हस्तामलकवत् अग्निविद्या देखाय दिया है ताते यह धन्य है इस प्रकार अन्तर से प्रशंसा करके प्रसन्न आत्मा भगवान्

वैवस्वत फेर भी नचिकेताप्रति कहतेभये अर्थात् वरत्रय व्यतिरिक्त अन्य वर अपनी प्रसन्नता से देतेभये १५॥

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरन्तवेहाद्य ददामि भूयः॥तवैव नम्ना भविताऽयमग्निः स्रजं चेमामनेकरूपां गृहाण १६॥

हे सौम्य! "तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः" [तिस नाचिकेता के कहने से प्रीतिमान महात्मा (मृत्यु) कहतेभये यहां तेरी (प्रीतिके निमित्त) अब फेर वरको देताहौं] अर्थात् तिस नचिकेताने कि जिसने मृत्यु से अग्निविद्या पाई है अरु सोई यथार्थ अग्निविद्या मृत्युको कहसुनाई तब नचिकेता पर प्रीतिमान् स्नेहकर्त्ता महात्मा मृत्यु भगवान् कहतेभये हे नचिकेतः! मैं तुझपर प्रसन्नहौं तिस प्रसन्नता के निमित्त वर त्रय व्यतिरिक्त अब यहां फेर चतुर्थ वर मैं देताहौं सो क्या वरदान है जो "तवैव नाम्ना भविताऽयमग्निः स्रजं चेमामनेकरूपां गृहाण" [यह अग्नि तेरेही नाम से प्रसिद्ध होगा पुनः यह शब्दवाली विचित्र मालाको ग्रहणकर] अर्थात् हे नाचिकेतः! यह अग्नि जो मैंने तुझको उपदेश किया है सो आज से तेरेही नाम से विख्यात होगा अर्थात् आज से अग्नि का नाम भी नचिकेता भया। हे सौम्य! मृत्यु भगवान् ने वरत्रय से अन्य चतुर्थ वरदान अपनी प्रसन्नता से नाचिकेता को दिया अरु एक माला अपने कंठ से उतार हाथ में ले कहतेभये कि हे नचिकेतः! यह शब्दवती माला सो कैसी है नानाप्रकार के मणि माणिक्य मुक्ता आदि मणियों से विचित्र बनी है तिस माला को भी आप ग्रहण करिये॥ इतना कह वह माला नाचिकेता के कंठ में सुशोभित करते भये अरु पुनः कर्म की स्तुति करते भये १६॥

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्म-

मृत्यू ॥ ब्रह्मजज्ञन्देवमीड्यं विदित्वानिचाय्येमाꣳ शान्तिमत्यन्तमेति १७ ॥

हे नचिकेतः ! " त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू " [त्रिणाचिकेत तीनसों सन्धिको पाय के तीन कर्म का कर्त्ता जन्म मृत्युको तरता है] अर्थात् नाचिकेत नामा तीन अग्नि जो तुझको कही हैं तिनके स्वरूपादि ज्ञानपूर्वक जो अग्निकी उपासना करते हैं अरु तीन जे माता पिता आचार्य तिन करके अनुसन्धान अर्थात् स्वर, वर्ण, मात्रा आदि शिक्षा प्राप्त करके तीन जे यज्ञ अध्ययन दानरूप कर्म तिन तीनों कर्मों को कर्त्ता पुरुष जन्म मरण से तरजाता है । अरु "ब्रह्मजज्ञन्देवमीड्यंविदित्वा निचाय्येमाꣳशान्तिमत्यन्तमेति" [ब्रह्म से उत्पन्न सर्वज्ञ स्तुति करने योग्य देवको जानके देख के यह अतिशय शान्ति को पावता है] अर्थात् ब्रह्म जो हिरण्यगर्भ तिससे उत्पन्नभया विराडात्मा वैश्वानर सो ब्रह्मज सर्वज्ञ सर्व करके स्तुति करने योग्य वैश्वानर आत्मदेवको जानके इस अन्तःकरणविषे सर्वका भोक्ता वैश्वानर आत्मा मैं हूं इसप्रकार देखके अनुभव किया है सो अतिशय शान्ति अर्थात् विराट् के पद को प्राप्त होता है ॥ हे सौम्य ! जो पुरुष माता पिता आचार्य्य इनसे शिक्षा पाय यथाविधि अग्निकी आराधना अरु अहमग्रे उपासना इनका समुच्चय सेवन करा है सो पुरुष विराडात्मा वैश्वानर के पदको प्राप्त होता है ॥ अब यथाविधि अग्नि की आराधनारूप प्रत्यक् उपासना का फल निरूपण करते हैं १७ ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम् ॥ स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके १८ ॥

हे नाचिकेतः ! " त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम् " [जो त्रिणाचिकेत पुरुष इन तीनको जान के ऐसे विद्वान् नाचिकेत को समाप्त करता है] अर्थात् तीन अग्नि का सेवनकर्त्ता जो पुरुष है सो इन पूर्व कहे तीन को अर्थात् ईंट, संख्या, वेदी, कुण्ड, मेखला आदिकों का बनावना १ अरु अग्नि आराधना के समय नियम, समिधा, द्रव्य पात्रादि २ अरु मन्त्र, स्वर, मात्रा, ऋषि, छन्द, देवता, आयतन, प्रतिष्ठा आदि ३ को माता, पिता, आचार्य द्वारा सम्यक्प्रकार जानके इसप्रकार अग्निविद्याके वेत्ता विद्वान् नाचिकेत नाम्ना अग्निको निरन्तर सेवते हैं " स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके " [सो मृत्यु के पाशों को पूर्वही त्यागकरके शोकको तरके स्वर्गलोक में सुख पावता है] अर्थात् अग्निके सेवनकर्त्ता अधर्म अज्ञान राग द्वेष जन्म मरणादि रूप मृत्यु के पाशसे पूर्वही छूटके पुनः देहपातान्तर शोक मोहादि नैमित्तिक मानसीव्यथासे निःशेष होय सर्वोत्तम स्वर्गलोक में दिव्यभोग भोगते सुखी होते हैं ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार कर्म अरु तिसके फलकी स्तुतिकर पुनः मृत्यु भगवान् कहते भये १८ ॥

एषतेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्योऽयमवृणीथा द्वितीयेन वरेण ॥ एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरन्नचिकेतो वृणीष्व १९ ॥

मृत्युरुवाच ॥ " एषतेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्योऽयमवृणीथा द्वितीयेन वरेण " [हे नचिकेतः ! तू दूसरे वरदानकरके जिसको मांगता भया सो यह स्वर्गसाधक अग्नि] अर्थात् हे नचिकेतः ! तू दूसरे वरदानकरके जिस अग्निविद्याको हमारे प्रति मांगताभया सो यह स्वर्गसाधन अग्निविद्याका वरदान तुमको दिया अरु " एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासः " [इस अग्नि

को तेरेही नामसे जन कहैंगे] अर्थात् मैंने जो तुझको उपदेश किया स्वर्गसाधन अग्नि इस अग्निको तेरेही नामसे सर्वजन कहैंगे अर्थात् अग्निको भी आज से नाचिकेता नामसे सर्व विद्वज्जन कहैंगे । यह जो वरदान तुझको दियाहै सो तेरे याचित वरदानों से व्यतिरिक्त अपनी प्रसन्नता से मैंने दिया है । अब "तृतीयं वरन्नचिकेतो वृणीष्व" [हे नचिकेतः ! तीसरा वर मांग] अर्थात् हे नचिकेतः ! पूर्व जो तुझको तीन वरदान देनेकी मैंने प्रतिज्ञा किया है तिनमें का एक वरदान तेरा बाकीहै सो तीसरा वरदानभी जो तुझको अभीष्ट होय सो निःशंक मांग ले अब हम भी सोई देंगे जो तेरी इच्छा होगी क्योंकि यावत् तीसरा वरदान तुझको न दूंगा तावत् मैं तेरा ऋणी हौं ताते जो तेरी इच्छा होय सो मांग के मुझको अनृण करो ॥ हे सौम्य ! यहां पर्यन्त अध्यारोपद्वारा कर्म अरु उपासना का स्वरूप अरु तिनके समुच्चय सेवनका फल विराट् के पद की प्राप्ति दो वरदानों करके प्रतिपादन किया । अब जिस लिये वेदभगवान्ने इस आख्यायिका का प्रारम्भ किया है सो ब्रह्मात्मैक्य विज्ञान ज्ञानकाण्ड पांच वल्लीकरके अपवाद द्वारा कर्म उपासना अरु तिनके फलमें दोषदृष्टिपूर्वक वैराग्यशील उत्तमाधिकारीके अर्थ प्रतिपादन करैंगे तहां प्रथम कर्म का फल जे पुत्र धन जीवन स्वर्गादि विषयसुख अज्ञानजन्य अनात्मा तिनके दोष नचिकेता ऐसे उत्तमाधिकारी द्वारा पुत्रादि लोभ के मिस देखावते हैं । तहां परम उदारात्मा नचिकेता कर्म उपासनाका फल जे त्रैलोक्यकी सर्व सामग्री सहित विराट्पदकी प्राप्ति तिससे अपने को शान्तात्मा न जानके आगे सर्वश्रेय परमपुरुषार्थकारी आत्मविज्ञानको मृत्यु भगवान्से तृतीय वरदानकरके मांगता भया १६ ॥

येयम्प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति

चैके ॥ एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः २० ॥

नचिकेतोवाच ॥ हे भगवन् ! " येयम्प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके " [मरे मनुष्य बिषे जो यह संशय है (तहां) कईएक हैं ऐसे कई एक नहीं हैं ऐसे (कहते हैं)] अर्थात् नचिकेता कहता है कि हे भगवन् ! मरेहुये मनुष्य बिषे जो यह आत्मज्ञान विषयक संशय है कि मृतक बिषे आत्मा है या नहीं तहां कई एक आचार्य देहसे व्यतिरिक्त अपने कर्मोंके फलों का भोक्ता स्वर्ग नरक में जाने आवनेवाला चैतन्य आत्मा है ऐसे कई पते हैं अरु कई एक मतवादी आचार्य उक्त प्रकारका आत्मा नहीं है ऐसा कहते हैं ॥ दूसरा अर्थ । हे भगवन् ! जो यह मृतक बिषे अर्थात् मृतधर्मा शरीर संघात बिषे यथार्थ आत्मज्ञान विषयक मनुष्यों में संशय है कि इस संघातरूप प्रत्यक्ष नाशवान् शरीर बिषे इससे भिन्न आत्मा है या नहीं है तहां कई एक आचार्य देह से व्यतिरिक्त अपने सर्व शुभाशुभ कर्मों के सुख दुःखादि फलका भोक्ता स्वर्ग नरक में जाने आवनेवाला आत्मा है ऐसा कहते हैं तब उनको कई एक मतवादी आचार्य ऐसा कहते हैं कि जैसा तुम देहसे व्यतिरिक्त दुःख सुख का भोक्ता आत्मा कहते हो सो नहीं, यह आत्मा है अर्थात् यह शरीर ही आत्मा है इसहीं करके सुख दुःखादि भोगे जाते हैं। तब उससे अन्य कहते हैं कि देहभी आत्मा नहीं क्योंकि मृतक देहसे कोई भी कार्य होता नहीं ताते शरीर में जो पांच तत्त्व हैं तहां पृथिवी, जल यह दो तत्त्व जड़ अनात्मा हैं अरु अग्नि, वायु यह दो तत्त्व आत्मा हैं इनहीं के न होने से शवविषे चेष्टा नहीं अरु आकाश शून्यरूप है ताते अग्नि, वायु यह दो तत्त्वही आत्मा हैं। तब उसको अन्य पुरुष ऐसा कहते हैं कि

हे भाई ! तुम कहते हो सो नहीं क्योंकि जब पात्र में जल उष्ण करते हैं तहां पांचों तत्त्व इकट्ठे होते हैं परन्तु वहां ज्ञानधर्म नहीं ताते यह अग्नि, वायु दो तत्त्व भी आत्मा नहीं । यह इन्द्रिय आत्मा है क्योंकि जहां यह पांचों ज्ञानेन्द्रियां होती हैं तहांही सर्वकार्य सिद्ध होते हैं एतदर्थ इन्द्रियांही आत्मा हैं । तब उसको अन्य पुरुष यह कहतेभये कि जिन इन्द्रियों को तुम आत्मा कहतेहो सो नहीं क्यों जो यह सर्व पृथक् २ हैं अरु एकका कार्य दूसरे से होता नहीं अरु यह पराधीन जड़ हैं ताते इन सर्वका प्रेरक आत्मा मन है क्यों जो मनही इनको करणोवत् अपने २ व्यापार में बर्त्तावे है ताते इन सर्वका आत्मा मन है । तब उसको अन्य पुरुष यह कहते हैं कि हे भाई ! जिस मनको तुम आत्मा कहतेहो सो आत्मा नहीं क्योंकि जब यह मन इन्द्रियोंके साथ मिलके विषयोंके साथ मिलता है तबउनका स्वरूपभूत होजाता है तिस समय इसको अपना पराया कुछ भी ज्ञात नहीं रहता ताते मन आत्मा नहीं । यह बुद्धि आत्मा है । तब उस बुद्धिवादी को अन्यपुरुष ऐसा कहतेभये कि यह बुद्धि भी आत्मा नहीं क्योंकि यह सुषुप्ति अवस्था में कारण अविद्यामें जायके ज्ञात रहित जड़ होती है ताते यह भी आत्मा नहीं ॥ हे भगवन् ! इस प्रकार मनुष्यों विषे आत्मज्ञान निमित्तक संशय को लेके अपनी २ कल्पनासे अस्ति नास्तिरूप विवाद करते हैं तिसका अन्तसार कुछ भी निकलता नहीं किन्तु संशयकी वृद्धि होती है । अरु यह आत्माविज्ञानही परमपुरुषार्थ है एतदर्थ "। एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेष वरस्तृतीयः ।" [आप करके शिक्षितभया मैं इस विद्या को जानों यह वरदानों के मध्य तीसरा वरदान है] अर्थात् हे भगवन् ! आपकरके उपदेश पाया जो मैं सो इस परमपुरुषार्थ साधक आत्मविज्ञानरूप विद्याको सम्यक् प्रकार से जानों यह सर्वश्रेष्ठ दानों के मध्य श्रेष्ठ वरदान है ताते तीसरा वरदान आत्म-

विद्या दीजिये । हे सौम्य ! इसप्रकार जब नचिकेताने मृत्यु भगवान् से तृतीय वरदान करके आत्मविद्याकी याचना किया तब अन्तर से प्रसन्न भये वैवस्वत भगवान् विचार करतेभये कि इस ब्रह्मचारी ने आत्मविज्ञानार्थ याचना किया है कि जो इन मनुष्यों करके दुःसाध्य है अरु तीसरा वर भी इसका देना है ताते आत्मविद्या देनेसे पूर्व इसके अधिकारित्वकी परीक्षा करनी योग्यहै ऐसा विचार के नचिकेताकी दृढ़ जिज्ञासा देखने के अर्थ बाह्यवाणीद्वारा प्रकट कहते भये २० ॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा नहि सुविज्ञेयमणुरेष धर्म्मः ॥ अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मामापरोत्सीरति मासृजैनम् २१ ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः ! जिस पदार्थको तू पूछताहै तिस को मैं नहीं जानता अरु "देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा नहि सुविज्ञेयमणुरेष धर्म्मः" [इस विषे देवताओंने भी पूर्व संशय किया है (ताते यह) सम्यक् जानने योग्य नहीं है (क्योंकि) यह धर्म सूक्ष्म है] अर्थात् इस आत्मज्ञान के विषयमें कि जिस को तू पूछता है बड़े २ देवताओं ने भी पूर्व संशयही किया है । अर्थात् हे नचिकेतः ! जिस आत्मज्ञान के विषयमें तू मनुष्यों को संशयवश अनेक कल्पना करते अज्ञानी कहता है तिसके विषय में मनुष्य की क्या कहिये किन्तु देवताभी संशयही करते हैं अरु मैं भी उसको नहीं जानता अरु पूर्व इस आत्मविज्ञान के अर्थ तुझसरीखे कितनेही पच २ के अभाव होगये हैं अरु कितने हठपूर्वक पचरहे हैं परन्तु यह सम्यक् प्रकार जाननेके योग्य नहीं है क्योंकि यह आत्मसंज्ञक धर्म महासूक्ष्म है । ताते तू इस झगड़े विषे मतपड़े कि आत्मा कौन है इसको पूछके क्या करेगा । अरु जो उसको जानभी लिया तो उससे क्या लाभ होगा अरु जो तुझको उसे जानना

ही है तो अपने लोक विषे जान लीजियो यहां इस झगड़े विषे क्यों पड़ता है " अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मामापरोत्सीरिति मास्रजैनम् " [हे नचिकेतः ! अन्य वर मांग मुझको मत रोक मेरे अर्थ इसको छोड़] अर्थात् हे नचिकेतः ! अब वहां इस आत्मविद्यासे इतर और वरदान जो आपकी इच्छा होय सोई मांगलो अब मुझको उपरोध मत करो अर्थात् जिस वस्तुको हम नहीं जानते तिसको मुझसे मत पूंछो जो मैं उस को जानता तो इस झगड़े विषे क्यों पड़ता ताते हे नचिकेतः ! इस आत्मविज्ञानके बदले और वरदान जो तुझको अभीष्ट होय सो मांगले एक हमारे प्रति इस आत्मविज्ञानरूप वरदान को छोड़ दे अर्थात् यह वरदान मत मांग ॥ हे सौम्य ! इस प्रकार जब मृत्यु भगवान् ने नचिकेता की परीक्षा के अर्थ आत्मविद्या मांगने का निषेध किया तब परमश्रद्धालु महाधैर्यवान् नचिकेता पुनः मृत्यु भगवान् से कहताभया २१ ॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वञ्च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ । वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्योवरस्तुल्य एतस्य कश्चित् २२ ॥

नचिकेतोवाच ॥ हे भगवन् ! आप आज्ञा करते हो कि " देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वञ्च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ " [हे मृत्यो ! इसविषे देवताओं ने भी निश्चय संशय किया है (अरु) पुनः आपभी जिसको सम्यक् जानने योग्य नहीं ऐसा कहतेहो] अर्थात् इस आत्मज्ञान विषय में देवता भी संशययुक्तही रहते हैं ऐसा मैंने आप से निश्चय किया अरु पुनः आप करके भी सुविज्ञेय नहीं अर्थात् आपभी उस को यथार्थ जानते नहीं सो तैसेही होगा, परन्तु जो आप नहीं जानते तो कैसे कहतेहो जो यह आत्मतत्त्वरूपी धर्म महासूक्ष्म है उस विषे देवता आदि बड़े २ पंडितभी संशययुक्त भये

यथार्थ नहीं जानते इसका जानना दुर्लभ है। हे भगवन्! इस प्रकार जो आपका कहना है तिसही करके प्रतीत होताहै जो आप आत्मतत्त्वको सम्यक्प्रकार जानतेहो क्योंकि हे भगवन्! आपने कहा कि 'अगुरेष धर्मः' यह धर्म सूक्ष्म है सो 'एषः' [यह] यह पद अंगुली निर्देशात्मक☞ अति समीपवर्त्ती प्रत्यक्ष के बिषे बर्त्तताहै ताते आत्मतत्त्व आपको हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष अनुभव है। अरु आप कहतेहो कि मैं आत्माको नहीं जानता अरु देवताभी नहीं जानते इस आपके वाक्यसे उस आत्म-तत्त्वकी दुर्विज्ञेयता भी आपकरके प्रकट है अरु "अविज्ञातं विजानतां" इस प्रमाणसे जिनको आत्मतत्त्वकी अविज्ञातता सहैव विदित है सोई विज्ञानपुरुष आत्मतत्त्व को जानते हैं। ताते अब आप जान बूझके मुझसे क्यों छिपावतेहो हे भगवन्! जिस आत्मज्ञान के बिषे देवता संशययुक्तही रहते हैं अरु आप भी जिसको अविज्ञात होने से नहीं जानते ऐसा कहतेहो तिस ही आत्मतत्त्वको मैं जानूंगा अरु आपसेही जानूंगा हे भगवन्! "। वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो ।" [इसका तुम्हारे तुल्य वक्ता प्राप्त होनेका नहीं] अर्थात् हमारे आचार्य आपही हो आपको छोड़के अब कहां जाऊं। हे भगवन्! इस आत्मतत्त्व का उपदेष्टा आपके तुल्य अन्य आचार्य कहीं भी प्राप्त नहीं यह मैंने भली प्रकार विचार देखा है। अरु आपने कहा जो आत्मविद्या से इतर अन्य वरदान मांग ले सो हे भगवन्! "। नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ।" [इसके तुल्य अन्य कोई भी वर नहीं] अर्थात् इस आत्मविज्ञानरूप वरके तुल्य अन्य कोई भी वर नहीं। क्यों जो इस आत्मतत्त्व से इतर है सो सर्वही कर्मका फल है ताते नाशवान् है सो हमारे कामके नहीं एतदर्थ हे भगवन्! अब आप कृपाकरके मुझ विद्यार्थीको तीसरा वरदान आत्मविद्याही प्रदान कीजिये। हे सौम्य! इसप्रकार जब नाचिकेताने कहा तब उसके वाक्य श्रवणकर

मृत्युभगवान् पुनः विचार करतेभये कि यह बाल ब्रह्मचारी अन्य है श्रद्धास्वरूप आत्मविद्या का अधिकारी है ताते यह ... का ब्रह्मविद्या के अधिकारी ऐसेही चाहियें परन्तु ब्रह्मविद्याके महत्त्वभी सर्वश्रेष्ठ है ताते इसके अधिकारित्वकी परीक्षा किये बिना ऐसे तैसे को यह देना योग्य नहीं । अरु एक वरदानभी इसका देना है परन्तु प्रथम इसको अन्य पदार्थों का लोभ देखाय इसकी परीक्षा करें जो यह किसी वस्तुके लोभ में आवे तो सो इसको दे बिदा करें अरु जो यह किसी पदार्थ के लोभ में न अटके तो इसका याचित वरदान इसको देवें यह ब्रह्मविद्या विना अधिकारी की परीक्षा के देना योग्य नहीं । इस प्रकार विचार के मृत्युभगवान् नचिकेताके प्रति कहते भये २२ ॥

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्॥ भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयञ्च जीवशरदोयावदिच्छसि २३ ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नाचिकेतः ! हे सौम्य ! अब तू इस ख्याल में क्यों पड़ताहै कि आत्मा इस संसार अरु संघात से भिन्नहै या नहीं है इसके जानने से तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा अब तू इस झगड़े को त्यागके और श्रेष्ठ पदार्थ मांग ले तहां जो तेरी इच्छा होय तो "शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व" [सौवर्षकी आयुवाले पुत्र पौत्रों को मांग ले] अर्थात् हे नाचिकेतः ! सौ सौ वर्षका आयुहै जिन्होंका सो कहिये 'शतायुषः' ऐसे पूर्णआयुवाले पुत्र अरु पौत्रों को मांग ले अरु "बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान् भूमेर्महदायतनं वृणीष्व" [बहुतसे पशुओंको हाथी सुवर्ण अश्वोंको (अरु) पृथिवीके बड़े स्थानको मांग ले] अर्थात् बहुतसे गौ महिषी आदि पशुओंको अरु बड़े बड़े उत्तम हाथी अरु सुवर्ण अरु उत्तम उत्तम जाति के घोड़े अरु पृथिवी के बिषे बड़ा विस्तीर्णस्थान अर्थात् राज्य मांग ले । अरु जो

कदापि ऐसा कहे कि जो इनका ग्राहक पुरुष आप अल्पायु भया तो यह सर्व अनर्थकेही हेतु हैं तो " स्वयञ्च जीवशरदोयावदिच्छसि " [आपभी यावत्पर्यन्त इच्छा होय तावत्पर्यन्त जीवन मांग ले] अर्थात् तू अपनेको जरा रोगादिकों से रहित जीवना मांग ले सो भी निरवधि जितने वर्ष तेरी इच्छा होय तावत् जीवता रहो २३ ॥

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकाञ्च ॥ महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि २४ ॥

हे नचिकेतः ! यह जो तुझको कहे हैं सो अरु " एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व " [इसके तुल्य यदि श्रेष्ठ मानता होय तो मांग] अर्थात् इनके समान जो कदापि और भी श्रेष्ठ मानताहोय तो सो भी मांग ले यह सर्व पदार्थ तेरे लोकविषे दुर्लभ हैं ताते " वित्तं चिरजीविकाञ्च महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि " [हे नचिकेतः ! वित्तको (मांग) किंवा चिरजीविका (अथवा) बड़ी भूमिका तू राजा हो] अर्थात् हे नचिकेतः ! बहुतसा सुवर्ण रत्नादि धन मांग अथवा बहुत कालपर्यन्त जीवना मांग परन्तु यह आत्मविद्या मत मांग । हे नचिकेतः ! इस विस्तृत भूमण्डलका तू चक्रवर्त्ती राजा हो सर्व प्राणी तेरी आज्ञा में रहेंगे तू सर्वका स्वामी होगा ताते जो तेरी इच्छा होय तो यह वरदान मांगले और भी जो तुझको अभीष्ट होय सोई मांग ले । हे नचिकेतः ! अब और विशेष क्या कहिये " कामानां त्वा कामभाजं करोमि " [सर्व भोग्यनका भोगके योग्य तुझको मैं करूंगा] अर्थात् तू सत्यसंकल्प हो जिस पदार्थकी तू इच्छा करेगा सोई तुझको निर्यत्न प्राप्त होगा ताते जो तेरी इच्छा होय तो यह वरदान मांग ले । हे नचिकेतः ! अब इस आत्मविद्याके अर्थ बालकस्वभावसे बालकोंवत् विशेष हठ मत करो

जिसके अर्थ तू विशेष आग्रह करता है सो पदार्थ मेरे पास नहीं ताते जो पदार्थ तुझसे कहेहैं उनमें से जो तेरी इच्छा होय सो अथवा सर्व मांग ले अब मैंभी तुझको सो पदार्थ देता हौं कि जिसकरके तेरे लोकविषे तेरे समान और कोई न होय अरु सर्व मण्डलेश्वर मनुष्यादि देवतावत् तेरी आराधना करैंगे एतदर्थ अब तू हठको त्यागके मेरे कहेभये वरदानों में से जो तेरी इच्छा होय सो निःशंकहोके मांग ले जो तू मांगेगा सोई हम देंगे परन्तु आत्मविज्ञान मत मांग । अरु हे नचिकेतः ! जो कदापि तू ऐसा कहे कि हमारे मृत्युलोक के सर्व पदार्थ नाशवान् अति तुच्छ हैं इनको लैके मैं क्या करौंगा तो श्रवणकर २४ ॥

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्व्वान् कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व ॥ इमा रामाः सरथाः सतूर्य्या नहीदृशालम्भनीया मनुष्यैः आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः २५ ॥

हे नचिकेतः ! "ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्व्वान् कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व" [जो जो विषय मनुष्यलोक में दुर्लभ हैं सर्वको इच्छाके अनुसार तू मांग] अर्थात् जो जो विषयभोग तेरे लोकविषे दुर्लभ हैं तिन सर्वको तू अपनी इच्छाके अनुसार मांग अर्थात् वेद करके जिनकी महिमा प्रकाशितहै और जिनकी प्राप्ति के अर्थ यज्ञादि कर्म करतेहैं तिन सर्व भोगोंको यथेष्ट मांग ले वह कौन कौन विषय भोगहैं "। इमारामाः सरथाः सतूर्य्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः" । [रथसहित वादित्र सहित यह अप्सरायें ऐसी मनुष्यनसे प्राप्तहोने योग्य नहीं] अर्थात् दिव्य रथादि यान अरु दिव्यवीणा मृदंगादि देववादित्र सहित यह देवताओं को रमणकरावनेवाली रम्भा उर्वशी आदि अप्सरायें कि जिनके दर्शनमात्रसेही वृद्धपुरुष

तारुण्य को प्राप्त होते हैं इसप्रकार की भोग्यसामग्री निश्चय करके मर्त्यलोक के निवासी मनुष्योंकरके अस्मदादि देवताओं के अनुग्रह विना प्राप्तहोने योग्य नहीं। ताते " आभिर्मत्प्रत्ताभिःपरिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः " [इन मेरी दईभई स्त्रियोंसे अपनी सेवा कराव हे नचिकेतः! मरण को मत पूछे] अर्थात् मुझकरके दीगई जे रम्भादि दिव्य अप्सरा (स्त्रियां) तिनकरके अपने शरीरकी पादप्रक्षालनादि परिचर्या कराव अरु सहित अपने पुत्र पौत्रनके जरा रोगादिकनसे रहित हुये चिरकालपर्यन्त दिव्यभोग्य भोगते रहो यह दिव्य भोग्य तेरे मर्त्यलोक बिषे अत्यन्त दुष्प्राप्यहैं सो मैं तुझको प्रसन्नतापूर्वक देताहौं ताते अब जो तेरी इच्छा होय सो मांग ले इन सर्व दिव्यभोग्यनको तेरे पास होने से तेरे लोक बिषे तेरी बड़ी शोभा प्रशंसा अरु यश प्रतिष्ठा होगी। अरु हमारे घरसे कोईभी अतिथि खाली नहीं गया ताते अब तेरे ऐसे उत्तमाधिकारी अतिथिको मैं खाली कैसे भेजूंगा एतदर्थ जो तुम्हारी इच्छा होय अरु जिसको तू सर्वसे श्रेष्ठ निर्दोष जाने सोई मांगले परन्तु हे नचिकेतः! मरणसम्बन्धी प्रश्न जो मृतकधर्मा बिषे आत्माहै वा नहीं है अरु जो है तो कौन है कैसा है यह काकदन्त परीक्षावत् अर्थात् काक के चोंच है सोई दन्त हैं वा चोंचसे इतर दन्त हैं तद्वत् प्रश्न करने को तुझ सारिखे विवेकी पुरुष योग्य नहीं ताते हे नचिकेतः! तृतीय वरदान करके जो तूने आत्मविद्याकी याचना किया है तिससे व्यतिरिक्त जो तू श्रेष्ठ जाने सोई वरदान निःशंक मांग ले। हे सौम्य ! इस प्रकार मृत्यु भगवान् उस आत्मजिज्ञासु नचिकेता को चक्रवर्त्ति राज्यसुख से लेके स्वर्ग के दिव्य भोगादि पर्यन्त उत्तम मध्यम सर्व पदार्थ सहित पुत्र पौत्रादि यथेष्टजीवन के देतेरहे कि जिसकी प्राप्ति के अर्थ बड़े बड़े देवता ऋषि राजा आदि नानाप्रकार के यज्ञादि कर्म उपासना तप योगादि करते हैं परन्तु यथेष्ट

निर्विघ्न फलप्राप्ति के विषय में संशययुक्तही रहते हैं सो पदार्थ विनाही श्रम के नचिकेताको प्राप्त होते रहे तथापि वह आत्मकामा परम वैराग्यवान् परम धैर्यवान् परम विवेकवान् सर्वोत्तमाधिकारी नचिकेता सो मृत्यु करके उत्पन्न कराये लोभन के क्षोभनवश न होयके सुमेरुवत् अचलचित्त अपने धैर्य में स्थित रहा अरु वाणीद्वारा मृत्यु भगवान् से कहता भया २५ ॥

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्व्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ॥ अपि सर्व्वंजीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते २६ ॥

नचिकेतोवाच ॥ हे भगवन् ! जो यह पदार्थ आप मुझको देतेहो सो सर्व उत्तम मध्यम होतसंते सन्मार्ग के रोकनेवाले हैं ताते मेरे काम के नहीं हे प्रभो ! " श्वोभावामर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्व्वेन्द्रियाणाञ्जरयन्ति तेजः " [हे अन्तक ! संशययुक्त भाववाले जो यह (स्त्री आदि) सर्व मनुष्यों के इन्द्रियन के तेजको नाश करे है] अर्थात् हे भगवन् ! हे सर्वके अन्तकर्त्तः ! हे मृत्यो ! कधी हैं कधी नहीं हैं इस प्रकार का संदिग्ध है भाव जिनका सो कहिये ' श्वोभावा ' ऐसे जो यह अप्सरादि उत्तम मध्यम पदार्थ आप देते हैं सो सर्व संदिग्ध हैं ये सर्वदा रहते नहीं पुनः यह सर्व पदार्थ कैसेहैं सुखरूप हुये सन्ते दुःख के दाताहैं अरु मनुष्यों के जे बुद्धि आदि इन्द्रियां हैं तिनका जे तेज पुरुषार्थ शक्ति तिन सर्व को क्षय करनेवाले हैं अर्थात् इसलोक परलोक के जे उत्तम मध्यम विषय भोग्य हैं सो सर्वही धर्म वीर्य प्रज्ञा तेज यशआदि शुभगुण तिनके क्षयकर्ता मित्ररूप वैरी हैं ताते हे भगवन् ! जो जो पदार्थ आप श्रेष्ठ जानके मुझको देतेहो सो सर्व श्रेयःमार्ग के अवरोधी अनर्थ का मूल हैं ताते हमारे काम के नहीं अरु हे भगवन् ! " अपि सर्व्वंजीवितमल्पमेव " [निश्चय करके सर्व आयु

अल्पही है] अर्थात् यह भी जो आप हमको कहते हौ कि मैं तुझको यथेष्ट काल पर्यन्तका जीवन देताहौं सो भी तू ले तहां भी श्रवण करो हे भगवन् ! ब्रह्मा से आदि ले के मशक पिपीलिकादि अतिअल्पायु जीवपर्यन्त के जीवन जे आयु सो अल्पही हैं क्योंकि एक की अपेक्षा से दूसरे का आयु अधिक है अरु एककी अपेक्षा दूसरे का आयु अल्प है ताते सर्वके आयु सापेक्षक होने से अल्पही हैं ताते बहुत जीवना भी हमारे काम का नहीं एतदर्थ हे भगवन् ! " तदैव वाहास्तव-नृत्यगीते " [तुम्हारे रथ नृत्यगीतादि तुमकाही रहें] अर्थात् आपके जे दिव्य अप्सरा रथ नृत्य गीत वादित्रादि भोग्य सामग्री जो आप मुझको देतेहौ सो सर्व आपके आपकोही रहें। यह सन्मार्ग के रोकनेवाले हमारे काम के नहीं हे सौम्य ! इस प्रकार वह परम विवेकी नचिकेता मृत्युभगवान् से कहके पुनः कहता भया २६ ॥

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा ॥ जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव २७ ॥

हे भगवन् ! आप जो मुझको राज्यादि विभूति देतेहौ तहां " न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो " [मनुष्य धनकरके तृप्ति करने योग्य नहीं] अर्थात् मृत्युलोकके निवासी जो मनुष्य सो विशेष करके धनादिकों के लाभसे तृप्त होते नहीं। अर्थात् संसारविषे जो विशेष वित्तका लाभहै सो पुरुषको तृप्तिकर नहीं किन्तुतृष्णा-रूप अग्निका बढ़ावनेवाला वायुहै ताते मैंने इसका त्याग किया है क्योंकि जिस पुरुषको तृष्णारूपी अग्नि लगा है तिसको वह जन्म जन्मान्तर पर्यन्त जलावताही रहताहै शान्त कदापि होने देता नहीं अरु देखने में सुन्दर है ताते यही शीतल अग्निहै लगे पीछे बुझता नहीं ऐसे तृष्णारूप अग्निको मेरा

नमस्कार है "। लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा " [वित्तको देखैंगे जब हम आपको देखते भये] अर्थात् हे भगवन् ! जोकि विभूति आप मुझको देते हो सो सर्व मुझको प्राप्त है क्योंकि अन्य मनुष्यादिकनको आपकी प्रतिमा मंत्र आदिकन की सेवामात्र ही से प्राप्त होतीहै अरु मैंने तो साक्षात् आपका दर्शन किया है तिसके प्रभावसेही मुझको निर्यत्न सहजही त्रैलोक्य की सर्व विभूति पाईही है ताते राज्य पुत्र वित्त अप्सरादिकोंके अर्थ आप ऐसे उदार दनर्शसे वरदान मांगना बने नहीं । अरु आपने कहा कि बहुतसा जीवन ले सो हे भगवन् ! "। जीवि-ष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं " [यावत् (यमपदविषे) तुम (स्वामी) स्थित रहोगे (तावत्) हम जीवेंगे] अर्थात् जब सर्वके मृत्यु आप सो मुझपर प्रसन्न हो तब मुझको मारनेवाला कौन है किन्तु कोई नहीं ताते हे भगवन् ! जबतक यमपद विषे आप स्वामित्वभावको प्राप्तहो तावत् आपकी प्रसन्नता के हेतुसे मैं सहजही जीवतारहौंगा ताते चिरकाल जीवने के अर्थभी आपसे वरदान मांगना योग्य नहीं एतदर्थ हे भगवन् ! "। वरस्तु मे वरणीयः स एव।" [मुझकरके मांगने योग्य वर तो सोई है] अर्थात् मुझ जिज्ञासु करके याचना करने योग्य जो वरदान है सो तो एक आत्मविज्ञानही है । ताते हे भगवन् ! यह जो वित्तादिकोंका लोभ आप देखावते हो सो तृष्णारूपी अग्निका वर्द्धक है ताते अब इसको परित्याग करके कृपापूर्वक मुझको एक आत्मविज्ञानही प्रदान कीजिये । हे सौम्य ! इस प्रकार सर्व ऐश्वर्य के त्यागपूर्वक आत्मविद्या कीही याचना कर पुनः कहताभया २७ ॥

अजीर्य्यताममृतानामुपेत्य जीर्य्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् ॥ अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत २८ ॥

हे भगवन् ! श्रवण करिये "। अजीर्य्यताममृतानामुपेत्य जीर्य्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् ।" [आयुकी हानिको न प्राप्त होने वाले देवनके समीप जायके जाननेवाला जरामरणवान् पृथिवीरूपी अधःस्थलबिषे स्थित भया (अस्थिर वस्तुको कैसे मांगेगा न मांगेगा) अर्थात् जिनकी वयः क्षीण नहीं होती ताते जरा अरु मरणभाव को नहीं पावते ऐसे जे अजर अमर देवता तिनको प्राप्त होकरके तिनके सकाशसे जो अतिउत्कृष्ट ब्रह्मविद्याप्राप्तिरूप अपना परम प्रयोजन प्राप्त करने योग्य है तिस को जाननेवाला जिज्ञासु आप जरामरणादि धर्मवान् सो अन्तरिक्ष लोककी अपेक्षा अधोलोक जे मर्त्यलोक तिसका रहने वाला होयके जो कदापि अनेक पुण्योंके संस्कार ईश्वरकृपासे सत्यासत्य विवेकवान् भया तिस विवेकी पुरुषकरके यह पुत्र वित्तादि अस्थिर नाशवान् पदार्थ हैं सो कैसे प्रार्थनीय होयँ अर्थात् वरदान करके मानने योग्य होगा किन्तु कदापि न होगा "। अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदान् ।" [रंग प्रीति अप्सरादि प्रमोद इनको अनित्य निरूपण करताभया] अर्थात् हे भगवन् ! अपने रंगरूप सौन्दर्य्यादि दिव्यगुणोंकरके पुरुषकी प्रीति तिसबिषे होनेसे विषयानन्दका मुख्य कारण अप्सरादि दिव्य विषय भोग्य विषयसुखके देनेवाले सो भी अनवस्थितरूप करके वेदादिकोंने निरूपण किया है । तथाच " पुण्यचितो लोकः क्षीयते " " कर्मचितो लोकः क्षीयते " । अरु तैसेही विशेष जीवना है क्योंकि यावत् इस अस्थि मांस मल मूत्रमय शरीर बिषे आस्था (सत्यबुद्धि) है तावत् विशेष जीवने की इच्छाहै सो अविवेकतासे है अरु जब विवेक करके इस शरीर के स्वरूप अवस्था विनाशको भलीप्रकार देखके जानालिया है तब "। दीर्घे जीविते को रमेत ।" [कौन अतिशय जीवनेविषे रमेगा] अर्थात् कौनसा विवेकी पुरुष बहुत कालपर्यन्त जीवने के अर्थ इच्छा करेगा किन्तु कोई भी न करेगा। ताते हे भगवन् !

यह जो अनित्य अस्थिर धर्मप्रज्ञा के हरणकर्त्ता विषय भोग तिसके लोभ देखावनेको त्यागके जिस आत्मविज्ञानके अर्थ मेरी प्रार्थना है सोई आप मुझको प्रदान करिये । यही वारंवार विनय है २८ ॥

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् ॥ योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यन्तस्मान्नचिकेता वृणीते २९ ॥

इति प्रथमाध्याये प्रथमावल्ली सम्पूर्णा शुभम् १ ॥

हे भगवन् ! प्रथम आपने कहाकि इस आत्मविज्ञानविषयक देवता आदि सर्व बड़े बड़े पण्डित होत संतेभी संशययुक्तही रहते हैं ताते तू आत्मविज्ञानको छोड़के अन्य वरदान मांग । सो हे प्रभो ! "[यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् "] हे मृत्यो ! जिस मृतक के विषे बड़ी परलोक की गतिविषय में यह संशयको करते हैं तिसको मेरे अर्थ कहो] अर्थात् हे अज्ञानसम्पत्ति के नाशकर्तः ! हे मृत्यो ! जिस मृतक के बड़े प्रयोजन परलोक की गति विषे संशय को करते अस्ति नास्ति नानाप्रकार आत्मा को मानते हैं । अथवा हे मृत्यो ! इस मरणधर्मा शरीर विषे यह जो अस्ति नास्तिरूप संशय करते हैं अर्थात् कोई कहता है कि शरीर से भिन्न परलोक में सुख दुःखका भोक्ता आत्मा है, कोई कहता है सो नहीं है, यह शरीरही आत्माहै,कोई कहताहै नहीं, यह इन्द्रिय आत्मा है, कोई कहता है नहीं, यह प्राण आत्मा है, कोई कहता है नहीं, यह मन आत्मा है, कोई कहता है नहीं, यह बुद्धि आत्मा है, कोई कहता है नहीं । हे भगवन् ! इस प्रकार आत्मज्ञानविषयक संशययुक्त हुये नानाकल्पना करते हैं सो इन कल्पनाओं के निर्णयद्वारा महत्प्रयोजन जे परलोक

की गति अर्थात् लोक कहिये शरीरादि वा स्वर्गलोकादि तिनसे पर जो आत्मा तिसकी प्राप्त्यर्थ जो आत्मविज्ञान ब्रह्मविद्या सो आप कहिये। हे भगवन्! बहुत कहने से क्या है " योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते " इति। [जो यह वर दुःख से विवेचन को प्राप्तभया प्रवेश को पाया है तिससे अन्य नचिकेता मांगता नहीं] अर्थात् जो यह प्रत्यगात्मविषयक वरदान गूढ़ कहिये जिसका यथार्थ विवेचन करना देवतादिकों करके भी कठिन है "तहां साधारण मनुष्योंकी क्या वार्त्ता है ? तिस आत्मविद्यासे व्यतिरिक्त जे इस लोक परलोकादिकों के विषयभोग्य जो अज्ञानी अविवेकी विषयी पुरुषों करके प्रार्थनीय सो आपका नचिकेता नाम विद्यार्थी मांगता नहीं। ताते हे प्रभो! अब कृपा करके आत्मविज्ञान उपदेश करिये २६॥

इति भाषाटीकाप्रथमाऽध्याये प्रथमावल्ली समाप्ता॥

ॐतत्सद्ब्रह्म १

ॐ अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषꣳ सिनीतः॥ तयोः श्रेयआददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उप्रेयो वृणीते १॥

ॐ नमोभगवते वैवस्वताय॥ श्रीगुरुरुवाच॥ हे सौम्य! इस द्वितीयावल्लीविषे श्रेयःप्रेयःरूप उभय मार्ग का अरु तिनके फलादिकों का निर्णय होगा तिसको भी श्रवण करो॥

मृत्युरुवाच॥ हे नचिकेतः! यह जो मैंने तेरे प्रति कहा है सो मुमुक्षुकी परीक्षा के अर्थ कहा है अरु मोक्षका मार्ग तो कोई औरही है। हे नचिकेतः! इस संसार विषे दो मार्ग हैं एक विद्यारूप दूसरा अविद्यारूप तिनको श्रेयः प्रेयः नाम से भी कहते हैं तहां " अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरु-

षधं सिनीतः ” [श्रेयः अन्य है प्रेयः भी अन्यही है सो दोनों भिन्न प्रयोजनके होते पुरुष को बांधते हैं] अर्थात् विद्यारूप श्रेयःमार्ग मोक्षकी ओरको लेजाता है अरु अविद्यारूप प्रेयः मार्ग सो संसारकी ओरही लेजाता है ताते यह श्रेयः प्रेयः मार्ग पृथक् पृथक् प्रयोजन बिषेहैं परन्तु सो तैसे होतसन्ते भी पुरुष को बांधते हैं अर्थात् वर्णाश्रमादिकों करके युक्त पुरुष अपने अपने संस्कार के आश्रय अपने अपने अधिकार से अपने बिषे कर्त्तव्यताके अभिनिवेश करके श्रेयः प्रेयः से बद्ध हैं । अरु हे नचिकेतः ! यह जो श्रेयः प्रेयः विद्या अविद्यारूप मार्ग हैं सो पृथक् पृथक् पुरुषार्थसम्बन्धी हैं ताते इनका परस्पर तेजः तिमिरवत् विरोध है ताते बिना एकके त्याग किये एक पुरुष करके इनका समुच्चय अनुष्ठान बने नहीं ताते उन उभयमार्ग के अनुष्ठान करनेवालों में से जो अपने हितार्थ “ तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति ” [तिन दोनों बिषे श्रेयः के ग्रहण करनेवाले का कल्याण होताहै] अर्थात् श्रेयःप्रेयः दोनों मार्गों मेंसे अविद्यारूप प्रेयःमार्ग को त्यागके जो विद्यारूप श्रेयःमार्ग को आश्रय करनेवाले हैं तिनका परमकल्याण होता है ताते हे नचिकेतः ! तू धन्यहै जो प्रेयः मार्ग को त्याग के श्रेयः के सम्मुख भयाहै यह श्रेयःमार्ग मोक्ष को प्राप्त करताहै इसमार्ग बिषे तुम्ह सारिखे कोई बिरलेही चलते हैं । अरु हे नाचिकेतः ! “ हीयतेऽर्थाद्य उप्रेयो वृणीते ” [जो प्रेयः को ग्रहण करता है सो पुरुषार्थ से वियोग पावता है] अर्थात् जो अदूरदर्शी विषय कामना करके विमूढ़ भये अविवेकी सकामी पुरुष अज्ञानवश अविद्यात्मक प्रेयःमार्ग को आश्रय करते हैं सो अपने मोक्षसाधक पुरुषार्थ से वियोग पावते हैं अर्थात् दूरसे दूर चलेजाते हैं ॥ प्र० ॥ हे प्रभो ! जब कि पुरुषन करके श्रेयः प्रेयः दोनोंही सेवनीयहैं तब लोकबिषे श्रेयःको त्यागके बहुधा प्रेयःकोहीआश्रय करते हैं तिसका क्या हेतु है सो आप कृपा करके कहिये १ ॥

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ॥ श्रेयोहि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते २ ॥

हे नचिकेतः! मन्दबुद्धि अविवेकी पुरुषको साधन फलादिकों करके श्रेयः प्रेयः का परस्पर भेद होते सन्ते भी इनका समुच्चय भासे है ताते "श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्यविविनक्ति धीरः" [श्रेयः अरु प्रेयः मनुष्यको प्राप्त होते हैं धीर तिनको सम्यक् देखके भिन्न करता है] अर्थात् हे नचिकेतः! यह श्रेयः अरु प्रेयः दोनों मार्ग इस मनुष्यको प्राप्त हैं परन्तु तिनका जो परस्पर भेद है सो सर्वको विदित नहीं तहां जो धीर सविवेकी पुरुष है सो उन श्रेयः प्रेयः दोनों को भले प्रकार से गुरु शास्त्र अनुभवद्वारा विचार देखके विद्या अविद्या को पृथक् पृथक् करता है तिन विवेचन किये श्रेयः प्रेयः मार्गों में से हे नचिकेतः! "श्रेयोहि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते" [सो धीर प्रेयः से भिन्न श्रेयःकोही ग्रहण करै है] अर्थात् सो तुम्ह सारिखे धीर परमधैर्यवान् विवेकी पुरुष विद्या (आत्मज्ञान) रूप श्रेयःमार्ग कोही अपने परम प्रयोजन मोक्षार्थ आश्रय करते हैं। हे सौम्य! यह श्रेयः मार्गही परम पुरुषार्थ का साधन है। अरु हे नचिकेतः! "प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते" [मन्दपुरुष योग क्षेमसे प्रेयःको ग्रहण करै है] अर्थात् मन्दबुद्धि अविवेकी सकामी पुरुष योग क्षेमकी कामनासे तहां अप्राप्त वस्तु की प्राप्तियोग अरु प्राप्तवस्तुकी रक्षा क्षेम तिसकी अभिलाषा से भया जो विवेक का अभाव तिसकरके प्रेयःको जो कि पुत्र पशु धनादि लक्षणरूप फलोत्पादक कर्म तिसहीको, श्रेष्ठ जान के आश्रय करते हैं। हे नचिकेतः! ऐसे अविवेकी सकामी मन्दपुरुष का आश्रय अरु संग त्याग के निकसि आया है ताते तू धन्य है तेरे ऐसे अधिकारी पूजने योग्य हैं २॥

स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥ नैताꣳसृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ३ ॥

हे नचिकेतः ! " स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः " [हे नचिकेतः ! सो तू प्रिय अरु प्रियरूप भोग्यनको चिन्तन करताहुआ त्यागता भया] अर्थात् सो तू कि जिसको मैंने नानाप्रकारके उत्तम मध्यम भोग्य पदार्थ जो देवताओं को भी दुर्लभ तिनका लोभ देखाया तथापि अपने धैर्य से चलायमान न भया अरु मनुष्यादि सर्वको प्रिय जे पुत्र वित्तादि अरु सर्व देवताओं को प्रियरूप जे अप्सरादि तिन सर्व करके लोभ देखाया परन्तु तिन सर्व भोग्यपदार्थों को तैंने विचार से विवेचन करके उनविषे अनित्य असारत्वादि दोषोंको देखके अपने विषे तिनकी कामना का त्यागही किया है कि जिनकी अभिलाषा करके देवता ऋषि मुनि पण्डितआदि वड़े वड़े गलतान होरहे हैं एतदर्थ भी तू धन्य है । हे सर्वबुद्धिमानों विषे श्रेष्ठ ! " नैताꣳसृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः " [इस वहुत धनयुक्त कर्मकी गतिको प्राप्त न भया जिसविषे बहुत से मनुष्य डूबते हैं] अर्थात् प्रेयःमार्ग करके प्राप्य बहुत से पुत्र वित्त राज्यादि धनयुक्त कर्मगतिरूपा कुत्सितनदीको तू प्राप्त न भया कि जिस कर्मलक्षणात्मक अविद्यारूप नदी विषे बहुत से अविवेकी सकामी पुरुष निरन्तर अनिवार्य डूवते चलेजाते हैं तातें हे नचिकेतः ! तू धन्य है सर्वप्रकार पूजने योग्य है तुझ ऐसे प्रेयःके त्यागी पुरुष संसार में दुर्लभहैं हे नचिकेतः ! तुझ ऐसे श्रेयःमार्ग के आश्रय करनेवाले पुरुषको परम कल्याणरूप आत्मपदकी प्राप्ति होती है ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! इन श्रेयः अरु प्रेयःका क्या भेद है सो आप कृपा करके कहिये ३ ॥

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता॥ विद्याभीप्सिनन्नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवो लोलुपन्तः ४॥

हे नचिकेतः! श्रवण करो "दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता" [यह दोनों अन्तराय से परस्पर भिन्न-रूप नानागतिवालियां हैं (अरु) जो विद्या अरु अविद्या है सो जानी है जिन्होंने] अर्थात् यह श्रेयः प्रेयः रूप विद्या अविद्या सो दोनों परस्पर महत् अन्तराय से हैं अरु नानागतिकरके भिन्न भिन्न फलकी हेतुहैं अर्थात् विद्या जो है श्रेयोविषया सो अपने वैराग्यादि साधनयुक्त होनेसे मोक्ष के हेतु है। अरु अविद्या जो है प्रेयोविषया सो अपने साधनकर्म कामनादिकों करके युक्त होनेसे जन्म मरणरूप संसार का हेतु है तातें इन विद्या अविद्या का परस्पर महत् अन्तर है 'जैसे सती अरु वेश्याका जैसे तेज अरु तिमिर का भेदहै तैसे' अरु जो श्रेयोविषया विद्या है अरु प्रेयोविषया अविद्या है तिन दोनों को वेदशास्त्र से ज्ञात किया है जिन्होंने तिन ज्ञातापण्डितों में "विद्याभीप्सिनन्नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवो लोलुपन्त" [नचिकेताको विद्या का अर्थी मानता हौं जो बहुत भोग भी तुझको चलायमान न करते भये] अर्थात् जो अपने पिताके हितमें श्रद्धासम्पन्न अपने शरीर पर्यन्त भी अर्पण करनेवाला अरु प्रेयःके विषयों से वैराग्यवान् श्रेयोभिलाषी जो नचिकेता नाम बालक ब्रह्मचारी है तिसको विद्या का अर्थी मैं मानता हौं॥ प्र०॥ हे भगवन्! आप मुझको विद्या का अधिकारी क्यों मानते हो॥ उ०॥ हे नचिकेतः! जो बड़े बड़े धीर पण्डितों की भी बुद्धि में लोभ करानेवाले अप्सरादि उत्तमोत्तम दिव्य भोग्य तिन करके तेरी परीक्षा के अर्थ मैंने नानाप्रकार के लोभ दिखाया तथापि वह दिव्य भोग्य तुझ

को अपने धैर्य से चलायमान न करसके एतदर्थ आत्मविद्या का अधिकारी तुझको मैं मानताहौं । हे नचिकेतः ! इस आत्मविद्या के अधिकारी तेरे ऐसे अति दुर्लभ हैं जो प्रेयः विषयों करके चलाया भया श्रेयः के अर्थ से चलायमान न भया ताते धन्य है ४ ॥

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः ॥ दन्द्रम्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ५ ॥

हे नाचिकेतः ! प्रेयःमार्ग के चलनेवाले संसारपात्र पुरुष हैं अर्थात् जिनके अन्तःकरण विषे पुत्र पशु वित्त राज्यादि नाना प्रकारके विषय भोग्य पदार्थरूप संसार कामनारूपसे निरन्तर रहता है । अरु आप इस संसार बिषे नानाप्रकार के उत्तम मध्यम निकृष्ट शरीर धारण करते रहते हैं ऐसे जे संसारपात्र सकामी पुरुष हैं सो सर्वदाही "अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः" [अविद्या के मध्य वर्त्तमान भये आपको धीर पण्डित ऐसे मानते हैं अर्थात् अन्धकार के मध्य पदार्थवत् पुत्र वित्त विषयादिरूप अविद्या के मोहपास करके "रेशम के कीटवत्" सर्व ओर से वेष्टित होरहे हैं तिस दशापर भी अपने आपको बड़े धीर बुद्धिमान् वेदशास्त्रादि विद्याविषे परमकुशल पण्डित मानते हैं । हे नाचिकेतः ! ऐसे जे पुरुष हैं सो "दन्द्रम्यमानाःपरियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः" [मूढ़ अत्यन्त कुटिल अनेकरूप गतिवाले सर्वओर भ्रमते हैं (जैसे) अन्धपुरुष करके ही जातेहुये बहुत अन्धे] अर्थात् अत्यन्त मूढ़ हैं जो अर्थविषे अत्यन्त कुटिल नानागतिको धारणकर संसार में विचरते हैं तिसकरके जन्म मरण जरा रोगादि दुःखयुक्त शरीरोंमें भ्रमते हैं "जैसे चक्षुविहीन "अन्ध" पुरुषकरकेही पहुँचाये गये दृष्टि-

विहीन जे अन्धे सो गर्त कंटक पर्वत पाषाण कूपादि विषम स्थानों में गिरके दुःख पावतेहैं तैसे ०। ताते हे नाचिकेतः ! जिन आचार्यनको श्रेयः प्रेयः के विवेकरूप चक्षू नहीं सो अन्धे आचार्य हैं तिनके उपदेशानुसार चलनेवाले जे पुरुष हैं सो अपने अन्धे आचार्यको अग्रसर करके तिनके अनुगामी हुये पुत्र वित्तादिकों के मोहरूप गर्तबिषे गिरते हैं अरु जन्म मरणादिरूप कंटक पाषाणादिकों को पाय अनिवार्य क्लेश भोगते हैं। ऐसे अविवेकी मूढ़ अन्धे आचार्यों के वाक्यपाश से तू निकसि आया है एतदर्थ भी तू धन्य है ५॥

न साम्परायः प्रतिभाति बालम्प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ॥ अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनःपुनर्व्वशमापद्यते मे ६ ॥

हे नचिकेतः ! "न साम्परायः प्रतिभाति बालम्प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्" [साम्पराय प्रमाद के करनेवाले धननिमित्त से अविवेक करके मूढ़भये बालकको प्रतिभासता नहीं] अर्थात् परलोक अरु तिसकी प्राप्तिका साधन शास्त्रों करके प्रकाशित शास्त्रीय साम्पराय (आम्नाय) सो अविवेकी शास्त्रहीन बालबुद्धि पुरुष के प्रति प्रकाशता (दीखता) नहीं तिसकारण से शास्त्रोक्त क्रियाबिषे प्रमादकर्ता है अर्थात् करनेको समर्थ हुआ भी नहीं करता ताते प्रेयः वित्त पुत्रादिकों के मोह करके अत्यन्त अविवेकताको प्राप्तभया है। सो शास्त्रीय आम्नायका अनभिज्ञ प्रमादी अतिमूढ़ पुरुष ऐसा कहता है कि "अयं लोको नास्ति पर इति मानी" [यह लोक है दूसरा नहीं ऐसा माननेवाला] अर्थात् यह जो दृश्यमान वित्त पुत्र कलत्रादि विषय भोग्य अरु अन्नपानादि विशिष्ट शरीर सोई सत्य है इस से इतर स्वर्गादि लोक अरु तद्विशिष्ट शरीर जो अदृश्यमान सो नहीं है। हे नचिकेतः ! इसप्रकार का माननेवाला अवि-

वेकी मूढ़ नास्तिक पुरुष है सो "। पुनः पुनर्वशमापद्यते मे " [वारंवार मेरे वशको प्राप्त होता है] अर्थात् वारंवार संसार विषे पशुपक्षिआदिकों के जन्म पाय मैं जो मृत्युहौं तिस मेरे वश होता है अर्थात् अनिवार्य संस्रृति को भोगता है ६ ॥

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः ॥ आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्य्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ७ ॥

हे नचिकेतः ! श्रेयःमार्गकरके प्राप्य जो आत्मा तिसको यथार्थ जाननेवाला लाखों में कोई एक बिरला होताहै एतदर्थ "। श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः " [यह (आत्मा) बहुतों करके श्रवण करनेको भी प्राप्त होने योग्य नहीं] अर्थात् जिस के विज्ञानार्थ तेरी प्रार्थना है सो यह आत्मा अनेक जे प्रेयः मार्ग के चलनेवाले सकामी मूढ़ पुरुष हैं तिन्हों करके तो श्रवण करनेमात्रको भी प्राप्त नहीं । अरु "। शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः " [बहुतसे सुनते हुये भी इसको जानते नहीं] अर्थात् जो किञ्चिन्मात्र उत्तम संस्कारी पुरुष हैं सो कदापि आत्मा को श्रवणभी करते हैं तथापि वैराग्यादि साधनों की न्यूनता से स्वभाव दोष करके इस प्रकृत आत्मा को जानते नहीं । ताते हे नचिकेतः ! तू यह निश्चय करके जान जो "। आश्चर्य्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्य्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः" [(आत्माका) वक्ता आश्चर्यरूप होता है (अरु) इसको प्राप्त होनेवाला निपुण होता है] अर्थात् निपुण से शिक्षाको पाया भया ज्ञाता आश्चर्यरूप होताहै] अर्थात् इस आत्माका यथार्थ कहनेवाला आश्चर्यरूप है तैसेही अनेक श्रोताओंके मध्य इस आत्मा को मनन अभ्यास करके प्राप्त होनेवाला आत्मवेत्ताओं में निपुण होता है सो भी आश्चर्यरूप है । अर्थात् हे नचिकेतः ! वेद शास्त्रको जाननेवाले यथार्थ आत्मानुभवी श्रोत्रिय ब्रह्म-

निष्ठ आचार्य से शिक्षित आत्मानुभवी पुरुष आश्चर्यरूप हैं ॥ प्र० ॥ हे भगवन्! आपने आज्ञा किया कि निपुण आचार्य के उपदेशद्वारा यथार्थ आत्मानुभवी पुरुष कोई एक बिरले होते हैं तिसका हेतु क्या ७ ॥

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ॥ अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ८ ॥

हे नचिकेतः! "। न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः" [अनेकप्रकार से चिन्तन किया है जिसने (तिस) अश्रेष्ठ पुरुष करके कहाभया यह (आत्मा) सम्यक् जाननेको अशक्य है] अर्थात् बहुत प्रकारसे आत्माको अस्ति नास्ति कर्ता अकर्ता शुद्ध अशुद्ध चैतन्य जड़आदि प्रकार से अपनी अपनी कल्पना करके निश्चित किया है जिन्होंने तिन वेदबाह्य तर्कादिलेके स्वकल्पितमतवादी आचार्यों से उपदेश कियाभया यह सर्वका प्रत्यगात्मा कि जिस विषयक तेरा प्रश्न है सो संशय विपर्ययसे रहित साक्षात् अनुभव होना अशक्य है ॥ प्र० ॥ हे भगवन्! जब वेदबाह्य कल्पितमतवादी अश्रेष्ठ आचार्यों के उपदेश से सम्यक् प्रकार आत्मा जानाजाता नहीं तब किन आचार्यों के उपदेश से यह आत्मा सम्यक् प्रकार जानाजाता है ॥ उ० ॥ हे नचिकेतः! "। अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्" [ब्रह्म के स्वरूपभूत अनन्यदर्शी करके कहेभये इस आत्माविषे गति-चिन्ता नहीं है (क्योंकि) परमाणु से भी अतिशय सूक्ष्म है (ताते) अतर्क्य है] अर्थात् जे अनन्यदर्शी ब्रह्म आत्माकी अभेदताको प्राप्तभये आचार्य तिनके उपदेश से यथार्थ सम्यक् आत्मज्ञान होता है सो आत्मा कैसा है कि अनेक बहिर्मुख आचार्यों करके अस्ति नास्ति कर्ता अकर्ता शुद्ध अशुद्ध सगुण

निर्गुणादि करीगई जे अनेक कल्पना सो कल्पनारूपी गति इस विषे नहीं है क्योंकि परमाणुके प्रमाणसे भी आत्मा महासूक्ष्म है इसही हेतुसे तर्कादिकोंका विषय नहीं अर्थात् कोई एक आचार्य स्वबुद्धि की कल्पना से आत्माको परमाणुके प्रमाण कहते हैं परन्तु सो आत्मा आकृति परिमेयता नाम रूप इत्यादि परमाणुरूप द्रव्यके धर्म से रहित महासूक्ष्म है ताते अतर्क्य है इसही से केवल ब्रह्म आत्मा के अभेदानुभवी अनन्यदर्शी आचार्य के उपदेश से ही अपने आप प्रत्यगात्मा की साक्षात् सम्यक् प्राप्ति होती है तिनसे इतर जे वेदबाहर अपनी कल्पना से कहनेवाले भेददर्शी और पुरुष हैं तिनके उपदेशसे आत्मा साक्षात्कार कदापि नहीं ८॥

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ॥ यान्त्वमापः सत्यधृतिर्वतासी त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ९ ॥

हे नचिकेतः ! एतदर्थ श्रुति प्रमाण से अनन्यदर्शी जे आत्मनिष्ठ आचार्य हैं तिन करके प्राप्त भई जो आत्मविषयिणी बुद्धि सो "नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।" [यह मति तर्क करके प्राप्त होने योग्य नहीं है अतिप्रिय ! अन्य आत्मवेत्ता करके ही कही भई सम्यक् ज्ञानार्थ होती है] अर्थात् यह आत्मविषयिणी मति स्वबुद्धिकल्पित तर्कादिकों करके प्राप्त होने योग्य नहीं है प्रियदर्शन नचिकेतः ! जे वेद से बाहर स्वकल्पना से कहनेवाले जे तार्किकादि तिनसे अन्यही जे श्रुतिवाक्यानुसार यथार्थदर्शी आत्मवेत्ता आचार्य हैं तिन करके उपदेश कीगई जो आत्मविद्या सो सम्यक् आत्मज्ञान के अर्थ कि जो परमपुरुषार्थ है होती है ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! तर्कादिकों से अप्राप्त जो मति सो कौनसी है ॥ उ० ॥ हे नचिकेतः ! "यान्त्वमापः सत्यधृतिर्वतासी त्वादृङ्नो

भूयान्नचिकेतः प्रष्टा।" [जिसको तू प्राप्त भयाहै (तू) सत्यधृतिवाला है हे नचिकेतः ! तेरे तुल्य मेरे अर्थ प्रश्नकर्ता अन्य होय] अर्थात् हमारे वरदान करके जिस मतिको आप प्राप्त भये हो सो कैसी मति है कि सत्यस्वरूप आत्माको यथार्थ विषय करनेवाली है ताते तू सत्यधृतिवाला है । हे सौम्य ! उक्त प्रकार नाचिकेता की प्रशंसा करते जे भगवान् वैवस्वत सो प्रसन्नतापूर्वक कहते भये कि हे प्रियदर्शन नचिकेतः ! मैं इच्छता हूं कि तेरेही तुल्य अधिकारी मेरे प्रति आत्मविद्या का प्रश्नकर्ता प्राप्त होय अर्थात् हे नचिकेतः ! जैसा आत्मविद्या का प्रश्नकर्ता अधिकारी तू है तैसे अन्य भी शिष्य वा पुत्र प्रश्नकर्ता अधिकारी का सत्सङ्ग मुझको प्राप्त होता रहे ९ ॥

जानाम्यहꣳशेवधिरित्यनित्यं नह्यध्रुवैः प्राप्यतेही ध्रुवन्तत् ॥ ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् १० ॥

हे नचिकेतः ! "। जानाम्यहꣳशेवधिरित्यनित्यं।" [निधि अनित्य है ऐसे मैं जानताहौं] अर्थात् यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्मों का फल जे स्वर्गादि लोकरूपी निधि सो सर्व अनित्यही है ऐसे मैं जानताहौं । अरु यहभी जानता हौं जो "। नह्यध्रुवैः प्राप्यतेही ध्रुवन्तत् ।" [अनित्य से निश्चय सो नित्य प्राप्त होता नहीं] अर्थात् अध्रुव जो यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्म तिन करके वो ध्रुव जो कि सर्वकल्पना से रहित सर्वका साक्षी आत्मा है सो निश्चय करके प्राप्त होता नहीं "। ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ।" [सो जानने के अनन्तरभी मैंने अनित्य द्रव्यन से नाचिकेताख्य अग्नि परिपूर्ण कियाहै नित्यको प्राप्तभयाहौं] अर्थात् उक्तप्रकारका ज्ञान होने के अनन्तर भी मैंने अनित्य जे पुत्र पशु स्वर्गादि सुखसामग्री तिनकरके युक्त जे नाचिकेताख्य अग्नि तिसकी

आराधना करके इस सर्वोत्तम यमपद्को नित्य जानके अपने को प्राप्त किया है । अर्थात् स्वर्गादि यावत् कर्मफल है तिन सर्वको अनित्य जानते संते भी मैंने धीरज न करके इस यम-पद्को अन्योंकी अपेक्षा नित्य जानके अग्नि की आराधना द्वारा अपने बिषे प्राप्त किया है सो पद्भी तूने अनित्य जानके अंगीकार न किया ताते तू धन्य है १० ॥ हे सौम्य ! आत्म-विद्या के अधिकारी सो होतेहैं जिनकी प्रशंसा वक्ता करते हैं ॥

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम् ॥ स्तोममहदुरुगायम्प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ११ ॥

हे नचिकेतः ! आप कैसेहो जो " कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम् " [कामकी प्राप्तिरूप जगत् का आश्रय अनन्त अभय स्वर्ग का पार] अर्थात् समाप्तभई है सर्वकाम कामना जहां सो कहिये ' कामस्याप्तिं ' अर्थात् आपकी सर्वकामना अभाव भई है क्यों जो मैं आपको त्रैलोक्य के उत्तम मध्यम सर्व भोग्य पदार्थ वित्त पुत्र अप्सरा हस्ति अश्व राज्यादि देतारहा परन्तु आपने उन सर्वको अनित्य असार जानके त्याग किया है अरु आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविकरूप जे सम्पूर्ण जगत् तिसका आश्रय मूलकारण अरु अश्वमेधादि सम्पूर्ण यज्ञोंका परमावधि सर्वोत्तम फल हिरण्यगर्भका पद सो कैसा है अनन्त अरु अभय भोग्यनका स्थान जे स्वर्गलोक 'स्वर्गे लोके न भयं किंचित्'तिससे भी परम उत्कृष्ट अरु " स्तोममहदुरुगायम्प्रातिष्ठांदृष्ट्वा " [स्तुति करने योग्य विस्तीर्णगति प्रतिष्ठाको देखके] अर्थात् देवादिकों करके भी स्तुति करने योग्य अरु महान् अणिमादि ऐश्वर्यादि फल गुण सहित विस्तीर्णगति अर्थात् सर्वत्र पूर्ण सूत्रात्मा सो सर्वोत्तम कर्मी उपासककी गति तिसको आपने इस अग्निविद्या

के उपदेश द्वारा विवेकचक्षु करके अनुभव किया तथापि उस हिरण्यगर्भ के पद को कि जिसकी उपासना से त्रैलोक्यके अणिमादि ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है तिसको भी कर्मोंका फल होनेसे अनित्यादि दोषयुक्तही देखा अरु " धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः " [हे नचिकेतः ! आप बुद्धिमान् भया अपने धैर्य से चलायमान न होके तिसका त्याग करता भया] अर्थात् हे नचिकेतः ! आप नित्यानित्य वस्तुके विवेकयुक्त बुद्धिमान् भये अपने धैर्य से चलायमान न होयके हिरण्य-गर्भके पदसों लेके त्रैलोक्य के सर्व भोग्यपदार्थों का त्याग करते हो ताते धन्य हो हम देवताओंसे भी श्रेष्ठ हो क्योंकि हम देवतालोक भी जिस भोग्य अरु पदको श्रेष्ठ जानके सज्ञात हुये भी तिस विषे अटकरहे हैं तिनहीं भोग्य अरु पदको आपने तुच्छ जान के त्याग किया है अरु परमानन्दरूप जो अविनाशी आत्मा है एक तिसकी जिज्ञासा बिषे परमधैर्यवान् हुये खड़ेहो ताते भी धन्य हो। उस आत्मपदकी प्राप्ति आप सरीखे त्यागवान् अधिकारी को ही होती है अन्यको स्वप्न में भी नहीं ११ ॥

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ॥ अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति १२ ॥

हे नचिकेतः ! जिस आत्माको आप पूंछतेहो " तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं " [सो दुःख से देखने योग्य गूढ़ आवृत] अर्थात् उसका देखना बहुत कठिन है क्योंकि वो अव्यक्तादिक सोंभी अतिसूक्ष्म है एतदर्थ सूक्ष्मबुद्धि विना उसका दर्शन होता नहीं अरु बुद्धिका सूक्ष्म होना सहज नहीं ताते वो आत्मा दुर्दर्श है अरु वो आत्मा महासूक्ष्म होनेपर भी अत्यन्त गहन जे अन्तः-करणरूपी वन कि जिसमें अनेकानेक प्रकारके शब्द स्पर्श

रूप रस गंध रूपविषय तिनके अनेक जन्मों के संस्काररूपी वृक्षोंकी सघनता है जिसका पार नहीं पाया जाता तिस अन्तः-करणरूपी वनबिषे "गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्" [गुहाविषे स्थित संकटाबिषे स्थित पुरातन] अर्थात् एक विज्ञानलक्षण-वान् बुद्धिरूपी गुहा है सो भी राग द्वेष काम क्रोधादि अनेक संकटों करके युक्त है तिस गुहाबिषे वो स्वयंज्योति आत्मा-रूपी सिंह अनादिकाल का स्थित है अरु सो वृद्धि क्षयादि सर्व विकारों करके रहित है ताते नित्य नवीन है। हे नचिकेतः! ऐसा अतिगूढ़ गह्वर सघन बुद्धिरूपी गुहाविषे अनादिकाल से जो छिपा भया स्थित महासूक्ष्म आत्मा है तिस आत्मा को "अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा" [अध्यात्मविद्या के योग से साक्षात् स्वयंप्रकाश अपना आप अनुभव करके] "धीरो हर्षशोकौ जहाति" [बुद्धिमान् हर्ष शोक को त्यागता है] अर्थात् आप सरीखे जे परमविवेकी बुद्धिमान् धीर पुरुष हैं सो हर्ष शोक पाप पुण्य सुख दुःखादि यावत् अविद्याकृत द्वंद्व हैं तिन सर्वका त्याग करते हैं १२॥

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेत-माप्य ॥ स मोदते मोदनीयꣳहि लब्ध्वा विवृतꣳहि सद्म नचिकेतसम्मन्ये १३ ॥

हे नचिकेतः! "एतच्छ्रुत्वासम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणु-मेतमाप्य" [मनुष्य इसको सुनके सम्यक् ग्रहण करके धर्म-रूप इस पृथक् आत्मा को प्राप्त होके] अर्थात् इस आत्मतत्त्व को जो कि मैंने तुझको बुद्धिरूपी गुहाबिषे कहा है तिसको ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से श्रवण करके पुनः तिसको भलीप्रकार मननद्वारा अपना आप आत्मस्वभाव से ग्रहण करके अरु मरणधर्मा जे शरीरादि संघात तिसके धर्मसों पृथक् करके तब इस महासूक्ष्म आत्मा को प्राप्त होके "स मोदते मोदनीयꣳ

हि लब्ध्वा विवृतं हि सद्म नचिकेतसम्मन्ये " [सो हर्ष करने योग्य कोही पायके आनन्द को पावता है मैं नचिकेता को खुले द्वारवाले ब्रह्मलोक को सम्मुख भया मानताहौं] अर्थात् सो विवेकी पुरुष हर्ष करने योग्य परमतत्त्व को पायके निश्चय परमानन्द को प्राप्त होता है हे नचिकेतः ! मैं आपको इस खुले द्वारवाले आत्माख्य ब्रह्मलोक के सम्मुख भया मानता हौं। अथवा हे नचिकेतः ! परमानन्द आत्मरूपी ब्रह्मलोक का साक्षात्काररूपी द्वार आपसरीखे अधिकारी को खुला भया मैं मानता हौं अर्थात् मोक्षाधिकारी आपही हौ १३ ॥

अन्यत्र धर्म्मादन्यत्राधर्म्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्॥
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद १४ ॥

नचिकेतोवाच ॥ हे भगवन् ! यदि आप मुझको ब्रह्मविद्या का अधिकारी मानते हो अरु मुझपर प्रसन्न हौ तो हे प्रभो ! "अन्यत्र धर्म्मादन्यत्राधर्म्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् " [धर्म से पृथक् (अरु) अधर्म से पृथक् (अरु) इस कार्यकारण से पृथक्है] अर्थात् धर्म जे अपरा विद्या करके प्रतिपाद्य यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्म अरु तिनके कारक फलादि सर्व से पृथक् है, अरु तैसेही अधर्म जे हिंसादि शास्त्र करके निषिद्ध आसुरी सम्पत्ति तिनसे अरु तिनके कारकादि सर्व से पृथक् है। अरु तैसेही इन कार्यकारणादि सर्वसे भी पृथक् है अरु तैसेही "अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च " [भूत से पुनः भविष्यत् से पृथक् है] अर्थात् भूत (व्यतीतकाल) अरु भविष्यत् (आगामीकाल) पुनः वर्तमानकाल इन तीनों कालों से पृथक् है। अर्थात् कालत्रय के व्यवधान से रहित सदा एकरस "यत्तत्पश्यसि तद्वद " [जो (वस्तु) तिसको (आप) जानतेहौ सो कहो] अर्थात् जो आत्मतत्त्व है तिसको आप देखते हौ अर्थात् साक्षात् अपना आप अनुभव करतेहौ सो कृपाकर मुझकोभी कहिये १४ ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्व-दन्ति ॥ यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यञ्चरन्ति तत्ते पदꣳ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् १५ ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः ! जिसको आप पूछतेहो तिसको मैं अधिकारी के भेदसे परा अपरा दोरूपसे प्रतिपादन करता हौं तिसको श्रवण करो। हे नचिकेतः ! "। सर्वे वेदा यत्पदमाम-नन्ति "। [सर्ववेद जिसपदको प्रतिपादन करते हैं] अर्थात् सर्व जे ऋगादिवेद उपनिषद् ब्रह्मप्रतिपादक ज्ञानशास्त्र तिस पदको प्रतिपादन करते हैं अरु "।तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति" [सर्व तपस्वी जिसको कहते हैं]अर्थात् सम्पूर्ण तपस्वी कि जिन का केवल "। ज्ञानमयं तपः "। विचारमयही तप है सो अरु अन्य जे ऋषि मुनि हैं सो सर्व उपदेशार्थ जिज्ञासु प्रति जो उपदेश कहते हैं अरु "। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति "।] जिसकी इच्छा करते ब्रह्मचर्य करते हैं अर्थात् जिस पदकी इच्छा करते जिज्ञासु गुरुकुलवास वेदाध्ययनादि लक्षणवाला ब्रह्मचर्यव्रत करते हैं "। तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीमि "। [तिस पदको तेरेअर्थ संक्षेपसे कहता हौं] अर्थात् सोई पद तुझको जानने की इच्छा है ताते तेरेअर्थ संक्षेप करके मैं कहता हौं "। ओमित्येतत् "। [जो यह ओम्पद है] अर्थात् हे नचिकेतः ! जिसको ओंकार कहते हैं सोई परमपद है १५ ॥

एतद्ध्येवाक्षरम्ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम् ॥ एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् १६ ॥

हे नचिकेतः ! "। एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम् "। [यह ही अक्षर ब्रह्म (अपर है) यह ही अक्षर परं (ब्रह्म है)] अर्थात् यह ही ॐकार अक्षर अपरब्रह्म है अरु यहही ॐकार अक्षर परब्रह्म है अर्थात् यह ॐकार त्रिमात्रिक वाचकरूप अपरब्रह्म है अर्थ यह कि ॐकार नाम है अरु परमात्मा नामी

है अरु "। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छाति तस्य तत्"। [इस ही अक्षर को जानके जो जिसकी इच्छा करता है तिसको सो होता है] अर्थात् जो इस कहे हुये ॐकार की उपासना के अधिकारी हैं सो अपने उपास्य अक्षर को आचार्य से सम्यक् प्रकार जानके उपासना करते हैं तिन उपासकों में जो जिसकी इच्छा करता है सो तिसको प्राप्त होता है अर्थात् जो अपरब्रह्म के अधिकारी वाचक त्रिमात्रिक ॐकार की उपासना करते हैं सो तिस भावको अर्थात् ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं । अरु जे परब्रह्म के अधिकारी वाच्य अमात्रिक लक्ष्यरूप आत्मा की अहमग्रे उपासना करते हैं सो तिस भावको प्राप्त होते हैं अर्थात् हे नचिकेतः ! इस ॐकार ब्रह्म की दो प्रकार उपासना है तहां मध्यमाधिकारी इस ॐकार अक्षरकी प्रत्येक उपासना करते हैं अरु जो उत्तमाधिकारी हैं सो अहमग्रे उपासना करते हैं ताते जो जिस प्रकार की उपासना करता है सो उसही भाव को प्राप्त होता है १६ ॥

एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ॥ एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते १७ ॥

हे नचिकेतः ! ।' एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।' [यह (ॐकार) आलम्बन श्रेष्ठ है (अरु) यह आलम्बन पर है] अर्थात् मध्यम अधिकारी को ब्रह्मलोकप्राप्ति के यावत् आलम्बन हैं तिन सर्वसे ॐकार की प्रत्यक् उपासनारूप आलम्बन श्रेष्ठ है अरु उत्तमाधिकारी को भी परब्रह्मप्राप्ति के अर्थ यह ॐकार की अहमग्रे उपासनारूप परमोत्कृष्ट आलम्बन है इससे श्रेष्ठ आलम्बन कोई नहीं ताते "।एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते "। [इस आलम्बनको जानके ब्रह्मलोक विषे पूजाको पावता है] अर्थात् इस परमोत्तम ॐकारोपासनारूप आलम्बन (आश्रय) को ब्रह्मनिष्ठ आचार्यद्वारा जानके अपने

अपने अधिकार प्रति उपासना करते हैं सो पुरुष ब्रह्मलोक बिषे महिमा को पावते हैं। अर्थात् हे नचिकेतः ! जो मध्यमाधिकारी है सो ॐकार की प्रत्यक् उपासना के आश्रय ब्रह्मलोक को प्राप्त होय ब्रह्मावत् पूजनीय होय पुन ब्रह्माद्वारा ॐकारके लक्ष्य प्रत्यगात्माको पाय मुक्त होता है। अरु जो उत्तमाधिकारी है सो ॐकारकी अहमग्रे उपासना के आश्रय सर्वलोक बिषे। " ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति " इस श्रुति के प्रमाण से साक्षात् ब्रह्मवत् पूजनीय होय परिणाम में यहांही विदेहमुक्त कैवल्य सर्वात्मभाव मोक्षको प्राप्त होता है। हे सौम्य ! पूर्व जो नचिकेता ने ' अन्यत्रधर्मात् ' इत्यादि श्रुति करके धर्म अधर्म से कार्य कारण से भूत भविष्यत् वर्तमान से पृथक् जिस निर्विशेष आत्मा के अर्थ प्रश्न किया तिस आत्माकी प्राप्त्यर्थ प्रथम साधनभूत सर्वोत्कृष्ट आलम्बन प्रणवोपासन मृत्यु भगवान् ने कही अब उस आत्मा को कहते हैं १७ ॥

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ॥ अजो नित्यः शाश्वतोयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे १८ ॥

हे नचिकेतः ! जिसको आप पूछते हो अरु ॐकार जिसका वाचक है सो आत्मा " न जायते म्रियते वा विपश्चित् " [जन्मता नहीं (ताते) मरता (नहीं) अरु विपश्चित् है] अर्थात् उत्पन्न होता नहीं अरु जो ऐसा पूछो कि आत्मा मरता है वा नहीं तो मरता भी नहीं। हे नचिकेतः ! जो वस्तु उत्पन्न होती है सोई अनित्य होती है अरु जो अनित्य होती है तिसही बिषे वृद्धि क्षय विनाशादि सर्वविक्रिया होती है अरु आत्मा नित्य है ' न जायते म्रियते ' कहने से आत्माको सर्वविक्रिया से रहित एकरस जानो। अरु पुनः कैसा है वह आत्मा जो अपने चैतन्य स्वभाव करके मेधावी अर्थात् सर्वज्ञ है अरु " नायं कुत-

श्चिन्न बभूव कश्चित् " [यह किसीसे भी भया नहीं] अर्थात् यह आत्मा कारणान्तर भी होता नहीं "तस्मात्" अर्थान्तर को भी प्राप्त होता नहीं ताते हे नाचिकेतः! यह आत्मा "अजो नित्यश्शाश्वतोऽयं पुराणः " [यह (आत्मा) अजन्मा है नित्य है शाश्वत है पुराण है] अर्थात् जिसको तू पूछताहै सो यह आत्मा जन्मादि विकारभाव रहित है अरु कालत्रय अबाध्य नित्य है अरु शाश्वत है अर्थात् वृद्धिक्षय वर्जित है जो वस्तु अशाश्वत होतीहै सोई वृद्धि क्षयवान् होती है अरु यह आत्मा क्षयादि वर्जित शाश्वतहै एतदर्थही धर्माधर्मादिसे परे अनादिकालका पुराना है परन्तु वृद्धिक्षय वर्जित होनेसे नित्यही नया है अर्थात् आकाशवत् एकरस है इसही से " न हन्यते हन्यमाने शरीरे " [शरीर के हनन भये हनन होता नहीं] अर्थात् शरीर के विनाश होने से भी आत्मा विनाशभावको प्राप्त होता नहीं१८॥

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुꣳ हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥ उभौ तौ न विजानीतो नायꣳ हन्ति न हन्यते १९ ॥

हे नचिकेतः! ऐसा जो अजन्मा अविनाशी अनादि एकरस महासूक्ष्म आत्मा है तिसको न जानके केवल देहमात्रकोही आत्मा मानके अपने आपको " हन्ता चेन्मन्यते हन्तुꣳ हतश्चेन्मन्यते हतम् " [हन्ता जब हननकरनेको मानता है (अरु) हत जब हन्य मानता है] अर्थात् हननकर्ता यदि विचारता है इसको मैं मारता हौं अरु हत होता पुरुष यदि अपने आपको हत मानताहै "उभौ तौ न विजानीतो नायꣳ हन्ति न हन्यते" [सो दोनों नहीं जानते यह हननकर्ता नहीं (अरु) हनन होता नहीं] अर्थात् हे नचिकेतः! सो दोनों हन्ता अरु हत पुरुष अपने आप प्रत्यगात्मा को जानते नहीं क्योंकि यह आत्मा अक्रिय होने से किसी को भी हननकर्ता नहीं अरु तैसेही निराकार अविनाशी होनेसे हत भी होता नहीं। अर्थात्

आत्मा सम्पूर्ण शरीरादिकों के धर्माधर्म लक्षण से विलक्षण सर्व का साक्षी निर्विकार है उस विषे धर्माधर्मरूप विकार अविवेकी पुरुष को भासता है आत्मज्ञानी को नहीं एतदर्थही आत्मवेत्ता धर्माधर्मादि विकाररहित होता है । हे भगवन् ! जो आत्मा सर्वविक्रिया से रहित अरु शरीरादिकों के धर्माधर्म से पृथक् है सो कैसा है अरु कहां रहता है अरु किस को प्राप्त होता है अरु कैसे प्राप्त होता है सो आप कृपा करके कहिये १६ ॥

अणोरणीयान् महतो महीयानात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ॥ तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः २० ॥

हे नचिकेतः ! जिसके अर्थ तेरा प्रश्न है सो आत्मा "। अणोरणीयान्महतो महीयान् ।" [सूक्ष्मसे अतिशय सूक्ष्म है (अरु) महत् से अतिशय महत् है] अर्थात् अणुः कहिये परमाणु तिन से भी अतिशय अणुः सूक्ष्मतर सर्व प्रकारकी आकृति परिमेयता नाम रूपादि द्रव्य के धर्मसे रहित महासूक्ष्महै अरु महत् जे पृथिव्यादि भूत इन सबसे बड़ा सबको अपने विषे अवकाश देनेवाला आकाश तिससे भी अतिशय बड़ा है अर्थात् सर्व भूतों से बड़ा आकाश है सो भी जिस तत्त्व के किसी अणुदेश में पड़ाहै ताते बड़ेसे भी अतिशय बड़ाहै सो "। आत्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।" [आत्मा इन जीवों की गुहाविषे स्थितहै] अर्थात् सो आत्मा जन्मवान् अर्थात् ब्रह्मासे आदि तृण पर्यन्त सर्वप्राणधारियोंकी हृदयरूपी गुहाविषे सर्वका अपना आप आत्मरूप स्थित है "। तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ।" [तिसको निष्काम हुआ देखता है धातु केप्रसाद से आत्मा की महिमा को देखता है (ताते) शोकरहित होता है] अर्थात् तिस अपने आप आत्मा को

अकामी पुरुष कि जिसकी सर्व कामना अभावभई अरु इन्द्रियां विषयों से उपराम भई हैं सो धातु जे मन आदि इन्द्रियां तिनके द्वारा होयके अपने आप आत्माकी महिमाको देखताहै कि जिसकी सत्ता से मन आदि इन्द्रियां अपने अपने व्यापार को करती हैं अरु जिसकी इच्छा से विषयों से उपराम होती हैं अरु जिसके प्रकाश से इनका व्यापार सिद्ध होता है सो ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हौं मुझसे इतर मेरा आत्मा अन्य कोई नहीं। हे नाचिकेतः ! इसप्रकार अकामी पुरुष अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाय अन्तर्मुख कर उनके द्वारा अपनी आप महिमा को साक्षात् अनुभव करता है तब सर्वशोकसे रहित होता है। " तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यति "। " तरति शोकमात्मवित् " ताते अभिप्राय यह है जो सकाम विषयी पुरुष करके आत्मा दुर्विज्ञेय है। " स शान्तिमाप्नोति न कामकामी " २० ॥

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्व्वतः ॥ कस्त-
म्मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति २१ ॥

हे नाचिकेतः ! आत्मा " आसीनो दूरं व्रजति " [अचलभया
दूर जाता है] अर्थात् अचलस्थित होतसंते भी मनआदि उ-
पाधि साथ मिलके ब्रह्मलोकादि पर्यन्त दूरसे भी दूर जाता प्रतीत
होता है। इसप्रकार स्वयंप्रकाश आत्मा जोकि सर्वविक्रिया
से रहितहै सो " शयानो याति सर्व्वतः " [सोयाहुआ सर्व ओरसे
जाता है] अर्थात् आत्मा सुषुप्तिवत् एकरस असंग विज्ञानघन
हुआ हुआ भी इन्द्रियों के साथ मिलके विषयादिकों प्रति जाता
हुआ प्रतीत होता है सो " कस्तम्मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातु-
मर्हति " [तिस मद अमदरूप देवको मुझ से अन्य कौन
जाननेको समर्थ है] अर्थात् (समदो) अन्तःकरणकी हर्षा-
त्मकवृत्ति साथ मिलके हर्षवान् अरु (अमदो) अहर्षात्मक-

वृत्ति साथ मिलके अहर्षात्मक इसप्रकार अनेक उपाधिधर्मसे मिलके अनेक विरुद्धधर्मवान् आत्मा भासे है ताते प्राकृत अविवेकी पुरुषों करके दुर्विज्ञेय है एतदर्थ तिस आत्मदेवको जो कि उपाधिके साथ मिलने से तत्तद्धर्मवान् भासे है मुझसे अन्य जे बहिर्मुख आचार्य हैं तिनमें से कौन जाननेको समर्थ है अर्थात् हे नचिकेतः ! उपाधियोंके धर्म साथ मिलके अनेक धर्मवान् भासता जो आत्मा तिसको सर्व उपाधियों के धर्मसे पृथक् करके एक हम जानते हैं अरु अन्यभी जे मुझसरीखे सूक्ष्मबुद्धि अन्तर्मुख ब्रह्मवेत्ता पण्डितहैं सो भी जानते हैं उनसे इतर जे बहिर्मुख अपरा विद्याऽऽश्रित भेदवादी विषयी पुरुष हैं सो उक्त आत्माको जान सकते नहीं २१ ॥

अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ॥ महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति २२ ॥

हे नचिकेतः ! जे मुझसरीखे सूक्ष्मबुद्धि अकामी आत्मवेत्ता पुरुष हैं सो आत्माको कहां अरु कैसे देखके सर्वशोकों से रहित होतेहैं सो श्रवण करो । वह आत्मा कैसाहै कि " अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।" [अशरीर है (अरु) स्थितिसे रहित शरीर विषे स्थितहै] अर्थात् स्थूल सूक्ष्म सर्वप्रकारकी आकृति परिमेयता नाम रूपादिसे रहित केवल चैतन्य विज्ञान-घन है सो अनवस्थ अर्थात् जिसकी स्थितिका निश्चय होता नहीं ऐसे जे अनित्य क्षणभंगुर नाशवान् देव पितृ मनुष्यादिकों के उत्तम मध्यम अधम शरीर तिनविषे नित्य सर्व विक्रिया से रहित चैतन्यमात्र स्थित है ॥ प्र० ॥ हे गुरो ! वह आत्मा सर्वशरीरोंमें खण्डरूपसे स्थित होगा ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! वह आत्मा खण्डरूप नहीं अखण्ड सर्वसे बड़ाहै ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! जब वह आत्मा सर्व से बड़ा है तब देहों विषे समाया कैसे ॥ उ० ॥ हे प्रियदर्शन ! वह आत्मा " महान्तं विभुमात्मानं

मत्वा धीरो न शोचति " [महान्है विभुहै (ऐसे) आत्मा को बुद्धिमान् पुरुष मानके शोकको पावता नहीं] अर्थात् सर्वसे बड़ा सर्वव्यापी है जैसे आकाश अखण्ड सर्वसे बड़ा सर्वत्र व्याप्तहै परन्तु सो निराकार सूक्ष्मरूप होनेसे खण्डभाव को न प्राप्त होके छोटे से घटादिक तिनबिषे व्याप्तहै? तैसेही चैतन्य आत्मा आकाशादिकोंसे भी महान् बड़ाहै तथापि वह निराकार महासूक्ष्म होनेसे खण्डभावको न प्राप्त होके आकाशादि तृणपर्यन्त सर्वबिषे पूर्णता से व्याप्त है तिस आत्माको सोहम् भावसे अर्थात् सो आत्मा मैंहूं इसप्रकार गुरु श्रुति अनुभवद्वारा अपने आपको जानके जिसने स्थिति पाईहै सो धीर आत्मदर्शी बुद्धिमान् जन्म मरण जरा रोग क्षुधा पिपासा सुख दुःखादि निमित्तक जे शोच तिनको शोचता नहीं । क्यों जो शरीरादि अरु तिनके धर्म तिन सर्व से पृथक् अचल अविनाशी अक्रिय एकरस चैतन्यघन सर्वात्मा अपने आपको साक्षात् अनुभव करचुका है २२ ॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ॥ यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुꣳस्वाम् २३ ॥

हे नाचिकेतः ! वह महासूक्ष्म निर्विकार आत्मा अतिदुर्विज्ञेय है तथापि तुमसरीखे अधिकारी को उपायद्वारा सुविज्ञेय अर्थात् जानने योग्यहै ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! उस आत्माको जाननेके विषय में उपाय क्या है सो आप कृपाकरके कहिये ॥ उ० ॥ हे नाचिकेतः ! "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो " [यह आत्मा बहुत पढ़ने से प्राप्त नहीं] अर्थात् यह जो सर्व का अपना आप प्रत्यगात्मा है सो बहुत से वेदादिशास्त्रों के पढ़ने से प्राप्त होता नहीं अरु " न मेधया न बहुना श्रुतेन " [धारणा

युक्त बुद्धि से भी (प्राप्त) नहीं (अरु) बहुत श्रवण से भी नहीं] अर्थात् मेधा जो ग्रन्थार्थ धारणाशक्ति तिसकरके भी आत्मतत्त्व प्राप्त नहीं अरु बहुत से शास्त्र श्रवण करने से भी वह प्राप्त नहीं ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! तब किसप्रकार से प्राप्त होताहै ॥ उ० ॥ हे नचिकेतः ! " यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः ।" [जिसकोही यह इच्छा करता है तिसही से लभ्य है] अर्थात् यह अपने आप आत्माको यह जो निष्काम सर्वसाधनसम्पन्न केवल आत्मकामी मुमुक्षुहै सो जब ब्रह्मनिष्ठ आचार्यसे आत्मप्राप्ति के अर्थ प्रार्थना करताहै तब तिस आचार्य से तत्त्वमस्यादि महावाक्योंके श्रवण मननरूप उपाय करकेही प्राप्त होता है । ताते हे नचिकेतः ! जो वैराग्यादि सर्वसाधनसम्पन्न केवल आत्मकामी जिज्ञासु है " तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम् ।" [तिसको यह आत्मा अपनी तनुको प्रकाशता है] अर्थात् जिस जिज्ञासुको यह अपना आप चैतन्य प्रत्यगात्मा है सो अपने आप शरीर विषेही साक्षीरूप सोऽहंभाव से प्रकाशता है अर्थात् साधनसम्पन्न निष्काम पुरुषकोही अपना आप आत्मा आचार्य से महावाक्य के श्रवणादि द्वाराही जाना जाता है ताते " नान्यः पन्थाऽयनाय " अन्यमार्ग कोई नहीं । एक महावाक्य के सम्यक् विचारद्वाराही है २३ ॥

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः । नाशान्तमानसोवापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् २४ ॥

हे नचिकेतः ! "नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः" [पापकर्म से अनिवृत्तभया (पावता) नहीं (इन्द्रिय) अशान्त भया (पावता) नहीं (चित्तकी) असमाहिततासे (पावता) नहीं] अर्थात् श्रुति स्मृति करके निषिद्ध जे पापकर्म तिनसे अनिवृत्तभया जो पुरुष सो आत्माको पावता नहीं अर्थात् वैराग्यादि साधनसे रहित पापरत अधर्मी पुरुषहैं तिनकरके आत्मा

जानने योग्य नहीं अरु जिनकी इन्द्रियां विषयसे उपरामभई नहीं तिन पुरुषोंकरके भी आत्मा जानने योग्य नहीं। अरु जे असमाहित चित्त हैं अर्थात् जिनका चित्त एकाग्रभया नहीं तिन पुरुषों करके भी आत्मा जानने योग्य नहीं। अरु "नाशान्तमानसोवापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्"। [अशान्त मनवाला भी (पावता) नहीं विज्ञान से इसको पावता है] अर्थात् जिसकी मनोगत सूक्ष्मवासना अभाव भई नहीं सो पुरुष भी आत्मा को पावता नहीं ॥ प्र० ॥ हे भगवन्! तब किसप्रकार आत्मा जानाजाताहै सो कृपा कर कहिये॥ उ० ॥ हे सौम्य! उपनिषदों के महावाक्यार्थ के ज्ञान से इस अपने आप आत्माको सोऽहमस्मि भावसे पावता है अर्थात् हे सौम्य! जिस पुरुष की वृत्ति पापकर्मों से उपरामभई है अरु सर्व इन्द्रियां अपने अपने विषयों से फिरी हैं अरु चित्त जिसका एकाग्र समाहित भया है अरु समाहितचित्तताके फलादिकों की सर्व वासना जिसके मनसे उठगईहै ऐसा जो साधनसम्पन्न जिज्ञासु है तिसको आत्मवेत्ता आचार्य से महावाक्यों के यथार्थज्ञान की प्राप्तिसे अपने आप अजर अमर अज अक्रिय आत्मा की सोऽहंभावसे प्राप्ति होतीहै "नान्यः पन्था विमुक्तये" अन्य उपाय आत्मप्राप्ति का कोई नहीं अरु तिस विना निर्वाणशान्ति नहीं २४ ॥

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनम्॥ मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः २५ ॥

इति प्रथमाध्याये द्वितीयावल्ली समाप्ता॥ २॥

हे नचिकेतः! जो केवलसाधनसम्पन्न निष्काम पुरुषकरके ही जाननेयोग्य आत्माहै सो कैसा है कि "यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनम्"। [जिसका ब्राह्मण अरु क्षत्रिय यह दोनों

भात होता है] अर्थात् जिस आत्मा का ब्राह्मण क्षत्रिय जो सर्वोत्तम सर्व धर्मके धारणकर्त्ता अर्थात् अपराविद्या करकेप्रतिपाद्य जे यज्ञ अग्निहोत्रादि धर्म तिसके धारणकर्त्ता सो दोनों अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय जे उत्तमधर्मा तिनके कहने से यावत् प्राणीमात्रहैं सो सर्व जिसका ओदन कहिये भात होताहै अरु " मृत्युर्यस्योपसेचनं " [मृत्यु जिसका उपसेचन है] अर्थात् जिसके भयविषे ब्रह्मादि सर्वप्राणी रहते हैं ऐसा जो सर्वका प्राणहर्त्ता मृत्यु सो जिसका उपसेचन (दाल कढ़ी शाक) स्थानीय है अर्थात् जिस आत्मा का ब्राह्मण क्षत्रिय देवी देवताआदि सम्पूर्ण चराचर भातस्थानीय भोजन सामग्री है अरु सर्व चराचर को भक्षणकर्त्ता जो मृत्यु सो जिसकी कढ़ी दालादि स्थानीय है ऐसा जो आत्मा तिसको "क इत्था वेद" [कौन ऐसे जानता है] अर्थात् भोग्यने भी कभी भोक्ता को जानाहै किन्तु कदापि नहीं जानता । ताते हे नचिकेतः ! जिन पुरुषों का देहादि अनात्मभाव उठगया है अरु तदाश्रित ब्राह्मण क्षत्र्यादि देहाभिमान नष्ट भया है अरु तिस अनात्म-अभिमान के आश्रय रहा जो अपने विषे अपराविद्या आश्रित धर्म तिससे भी सम्यक् उपराम भयाहै । अरु पराविद्या करके प्रकाशित जे शम दमादि साधनरूप पराधर्म तिनकरके सम्पन्न जो आचार्य्यवान् पुरुष है सो इस प्रत्यगात्मा को जानता है " यत्र सः " [सोई यहां (आत्मा होता है)] अर्थात् " ब्रह्म-विद् ब्रह्मैव भवति " इस श्रुतिके प्रमाणसे ब्रह्मवेतारूप ब्रह्मका भी सर्व ब्रह्माण्ड आहार होता है । अर्थात् उसका जगद्भाव उठजाताहै अरु जिस मृत्यु के भयविषे ब्रह्माण्ड रहताहै तिस के भयसे रहित परम निर्भय चैतन्यघन कि जिसके भयविषे मृत्यु आदि रहते हैं । तथा च ' भयादस्याग्निस्तपति भयात्त-पति सूर्य्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ' "भी-षस्माद्वातः पवते भीषोदयाति सूर्य्यः भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च

मृत्युर्धावति पञ्चमः " ऐसा जो सर्वके भयका कारण अरु आप निर्भय शान्त सर्वात्मा होता है २५ ॥

इति कठवल्लीउपनिषद्प्रथमाध्याये द्वितीयावल्लीभाषा टीकासमाप्ता २ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ हे सौम्य ! दो वल्लीद्वारा विद्या अविद्या का निर्णय भया है अब इस तीसरी वल्लीकरके जिसप्रकार ज्ञानी अज्ञानी पुरुष विद्या अविद्यारूप मार्ग करके आवते जाते हैं अर्थात् जिसप्रकार ज्ञानी पुरुष ब्रह्मविद्यारूप श्रेयोमार्ग करके संसार के पार जाते हैं अरु अज्ञानीपुरुष अविद्यारूप प्रेयोमार्ग करके संसार में आवते हैं तिसका निर्णय होगा तहां उन आवने जानेवालों के अर्थ शरीररूपी रथ कहाजायगा तिस विषे हृदयरूपी गुहा कही जायगी तिसविषे बैठनेवाले विद्या अविद्या के अहंकारी दो पुरुष कहे जायँगे तहां एक भोक्ता दूसरा अभोक्ता कहा जायगा तिस सर्व को सावधान होके श्रवण करो ॥

ॐऋतं पिबन्तौ स्वकृतस्य लोके गुहाम्प्रविष्टौ परमे परार्द्धे ॥ छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेतः १ ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः ! " ऋतं पिबन्तौ स्वकृतस्य " [अपने किये कर्म का (फल) सत्यको पान करते हैं] अर्थात् अपने किये कर्मोंका जो अवश्यभावी फलहै तिसको पान करते दोनों दृष्टआवते हैं परन्तु उनमें से एक जो जीव है सो पान करताहै साक्षी नहीं करता तथापि पात्रसम्बन्धसे दोनों पान-कर्ता कहे जाते हैं ' जैसे किसी मद्यवाले की दूकानपर दो पुरुष बैठे होयँ तिनमें से एक तो मद्यपान करताहै दूसरा नहीं करता परन्तु दूरसे दोनोंही पानकर्ता कहेजाते हैं तैसे ' अथवा

जैसे दो पुरुष साथही मार्गमें चलते होयँ तहां एकके हाथ में छत्र होय दूसरेके नहीं परंतु दूरसे दोनों छत्रवाले कहेजाते हैं तैसेही॰ जीव अरु साक्षी यह दोनों इकट्ठेही हैं परन्तु अपने किये कर्मोंका फल जीव भोक्ता है साक्षी नहीं भोक्ता सो कहां बैठके भोक्ता है "। लोके गुहाम्प्रविष्टौ परमे परार्द्धे "। [लोकविषे गुहामें प्रवेशको पायेहैं उत्कृष्ट परब्रह्म के स्थान विषे] अर्थात् इस शरीररूपी लोक "पुर" बिषे हृदय किंवा अन्तःकरणरूपी गुहा बिषे जो कि बाह्याकाशकी अपेक्षा परम अरु परब्रह्म के निवासका स्थानहै क्योंकि हृदयाकाश बिषेही परब्रह्म आत्माकी प्राप्ति होती है ताते ' परमे परार्द्धे ' करके उपलक्षित जो हृदयाकाश तिस बिषे जीव अरु साक्षी दोनों प्रवेश को पाये हैं तिन दोनोंको "। छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति "। [छायाआतपवत् ब्रह्मवेत्ता कहतेहैं] अथात् धूपछायावत् विरुद्धधर्मा हैं तहां एक संसारी दूसरा असंसारी ऐसा ब्रह्मवेत्ता कहते हैं सो केवल अकर्मी ब्रह्मवेत्ताही कहते होयँ ऐसा नहीं किन्तु "। पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेतः ।" [पंचाग्निवाले पुनःत्रिणाचिकेत पुरुष हैं सो भी कहते हैं] अर्थात् पंचाग्नि के सेवनकर्ता उपासक गृहस्थ अरु पुनः जे नाचिकेताख्य अग्निके उपासक हैं सो जीव अरु साक्षीको धूपछायावत् विरुद्धधर्मा कहते हैं हे नचिकेतः ! हे सौम्य ! जो कि साक्षी अरु जीव को छायाआतपवत् परस्पर विरुद्धधर्मा कहतेहैं सो केवल उपाधिके सम्बन्धसे कहते हैं ॰जैसे सूर्यके आगे यावत् परदा होताहै तावत् छाया अरु धूप पृथक् पृथक् होतेहैं अरु जब मध्यसे परदा दूर होताहै तब एक सूर्यही प्रकाशताहै ॰ तैसेही अहंकर्ता अहंभोक्तारूपी अन्तःकरण की वृत्तिरूप परदा इस आत्मारूपी सूर्य के आगे यावत् खड़ाहै तावत्जीव अरुसाक्षी धूपछायावत् पृथक् पृथक्है अरुजब मध्य में से अहंकाररूपी परदा विचारद्वारा गिराय दिया तब उस जीवको जीवत्वके अभाव से सूर्यवत् एक अपना आप आत्मा

स्वयंप्रकाश सर्वका साक्षी अकर्ता अभोक्ता परमानन्दरूप अपना आप दृष्ट आवता है ताते जो ब्रह्मवेत्ता किंवा कर्मी आचार्य जीव साक्षीको छायाधूपवत् विरुद्धधर्मा कहते हैं सो अहंकाररूपी परदाको लेके कहते हैं उपाधि के अभावसे भेद नहीं एक शुद्ध आत्माही है १ ॥

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् ॥ अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतꣳशकेमहि २ ॥

हे नाचिकेतः ! “यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् ॥ अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतꣳ शकेमहि ।” [जो यजन करने वाले का सेतुवत् है (अरु) नाचिकेतनामा अग्निको (जानने से) भय रहित पार है (तिसको) प्राप्त होने की इच्छावाले को जो परअक्षर ब्रह्म है (तिसको भी प्राप्तहोने को) समर्थ है] अर्थात् यह जो यजनकर्ता यजमान है तिसको संसार में प्राप्त करने को यज्ञ अग्निहोत्रादि जे सकाम किये कर्महैं सो कामना द्वारा सेतुवत् होते हैं अर्थात् यजमानको उसके सकाम कर्मही वारंवार संसार को प्राप्त करते हैं अरु जे मुमुक्षु पुरुषहैं तिनको यह यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्म सज्ञात निष्काम कियेभये अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा संसार के पारजाने को सेतुवत् हैं । ताते हे नचिकेतः ! नाचिकेतनामा अग्नि जो कि द्वितीयवरदान करके हमारे उपदेशद्वारा तुमको ज्ञातभया है अरु जिसका आपने मनन किया है तिसके निष्काम सेवन करने से अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा संसार के पार अर्थात् नामरूप क्रियात्मक जो संसार तिससे पृथक् सर्वभय से रहित संसार से तरनेकी इच्छावाले का पारहै अरु जो परम आश्रय आत्मसंज्ञक अपना आप अविनाशी ब्रह्म है तिसके जाननेको हम समर्थ हैं अर्थात् यह जो यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्म हैं सो विद्याज्ञानपूर्वक निष्काम किये भये अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा मुमुक्षुको इस संसाररूप

महासागर के पार सुगम प्राप्त होने के अर्थ सेतुवत् सुखकारी होते हैं ' जैसे राजालोग नदी पर सेतु बांधके रथारूढ़ होय सुखपूर्वक पार जातेहैं तैसे ' । हे सौम्य ! अहंकारादि उपाधिके धर्म करके तदवच्छिन्न आत्माको कर्ता भोक्ता आदि संसारी भाव से जीवपना है तिस जीवको अज्ञानजन्य अपने कर्मानुसार संसार में आवने के अर्थ अरु सज्ञान मुमुक्षुको मोक्षरूप संसार के पार प्राप्त होनेके अर्थ राजावत् रथ चाहिये अरु तिसके चलनेको सारथी आदि सामग्रीभी चाहिये तिन सर्वको जिसप्रकार वेदने प्रतिपादन किया है सो सर्व श्रवण करो २ ॥

आत्मानꣳ रथिनं विद्धि शरीरꣳ रथमेवतु॥ बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ३ ॥

हे प्रियदर्शन नचिकेतः ! "। आत्मानꣳ रथिनं विद्धि " [आत्माको रथका स्वामी जानो] अर्थात् इस अन्तःकरणविशिष्ट सोपाधि कर्ता भोक्ता संसारी जीवात्माको रथका बैठने वाला रथी स्वामी जानो अरु "। शरीरꣳरथमेवतु " [शरीर को रथही जानो] अर्थात् इस स्थूलशरीरको रथस्थानीयही जानो अरु "। बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि ।" बुद्धिको तो सारथी जानो] अर्थात् इस शरीररूपी रथको चलावनेवाला सारथी तो बुद्धि कोही जानो क्यों जो शरीरका सर्व व्यापार बुद्धि करके ही चलताहै अरु बुद्धि विज्ञाननेत्र करके सम्पन्न होने से इन्द्रियादि सर्वको यथा प्रमाण चलावे है ' जैसे सारथी नेत्रप्रधान होने से रथको ऊंचे नीचे स्थानसों बचाय के चलावे है तैसे ' ताते हे सौम्य ! जीवात्माको (रथी) शरीरको रथ, बुद्धिको सारथी, जानो अरु "। मनः प्रग्रहमेव च ।" [मनको रस्सीही जानो] अर्थात् संकल्प विकल्पात्मक जो मन तिसको रस्सी (बाग) स्थानीय जानो क्यों जो मन करकेही इन्द्रियोंका रोकना होताहै ' जैसे बागके आश्रय अश्वोंका मंद चलावना शीघ्र चलावना

रोकना फेरना होता है तैसे, ताते मनको रस्सी (डोरबाग) के स्थानीय जानो ३ ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ॥ आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ४ ॥

हे नचिकेतः ! इस शरीररूपी रथविषे "। इन्द्रियाणि हयानाहुः ।" [इन्द्रियोंको अश्व कहते हैं] अर्थात् चक्षुरादि पंच ज्ञानेन्द्रियां अरु वागादि पंच कर्मेन्द्रियां यह दश घोड़े हैं क्यों जो इस शरीररूपी रथको खींचते यहीहैं जिधरको मनरूपी बाग के आश्रय इन्द्रियांरूपी घोड़े शरीररूपी रथको खींच ले जाते हैं तिस ओरको यह जाता है ' जैसे रथको घोड़े बाग के आश्रय जिधर लेजाते हैं उधर जाता है तैसे' ताते इन्द्रियोंको घोड़ेस्थानीय जानो अरु "। विषयांस्तेषु गोचरान् ।" [विषयों को तिनके मार्ग जान] अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन पंच विषयोंको इन्द्रियांरूपी घोड़ों के चलनेके मार्गस्थानीय जानो क्यों जो इन्द्रियांरूपी घोड़े शरीररूपी रथको विषयोंकी ओरही खींचते हैं ताते विषयों को मार्ग जानो । हे नचिकेतः ! यह जो आत्माहै सो वास्तव करके अकर्ता अभोक्ता परमशान्त अचल एकरस निर्विकारहै परन्तु "। आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।" [शरीर इन्द्रिय मन करके सहित (आत्मा को) विवेकी जन भोक्ता ऐसा कहते हैं] अर्थात् तिस आत्मा को शरीर इन्द्रिय मन आदि उपाधि सहित होनेसे आवागमनवान् पाप पुण्यके फल सुख दुःखादिकोंका भोक्ता (भोगने वाला है) इस प्रकार मननशील जे विवेकी पुरुष हैं सो कहते हैं अर्थात् केवल निरुपाधि शुद्ध अचल आत्माको गमनागमन कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि कुछभी है नहीं तथापि बुद्ध्यादि उपाधि करके सहित होने से बुद्ध्यादिकों के कर्तृत्व भोक्तृत्वादि धर्म आत्मा विषे भासते हैं परन्तु सो धर्म आत्मा के नहीं ऐसा

श्रुत्यन्तर में देखाया है । "ध्यायतीव लेलायतीव" इत्यादि बृहदारण्य के छठे अध्यायमें है । हे नचिकेतः ! जो शरीररूपी रथ निरूपण किया है तिस द्वाराही विष्णुपदकी प्राप्ति अपना आप आत्मत्व करके ही होती है अन्यथा नहीं । अरु दुःखरूप संसार की प्राप्ति भी इसही रथ द्वारा होती है परन्तु रथ के चलावने की मुख्य सामग्री बुद्धिरूपी सारथीही है तहां जिस रथी का सारथी परमविवेकवान् होता है सो रथी अपने रथ द्वारा संसार के पार मोक्षाख्य विष्णुपदको प्राप्त होता है अरु जिस रथीका सारथी अविवेकी मूर्ख है सो जन्म मरणरूप संसार को ही प्राप्त होता है अब तिसको भी श्रवण करो ४ ॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ॥ तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ५ ॥

हे नचिकेतः ! "यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।" [जोकि अविवेकी होता है अरु मन करके सदा अयुक्त होता है] अर्थात् जिस पुरुष का बुद्धिरूपी सारथी रथ के चलावने विषे निपुण नहीं होता कि शरीररूपी रथको बुरे मार्ग से बचाय के चलावना अरु और जे रथचर्या हैं कि चक्रादिकों को यथार्थ रखना अरु इन्द्रियांरूपी घोड़ों की जो संकल्पविकल्पात्मक मनरूपी वाग तिसको यथार्थ ग्रहण करना इत्यादि कार्यों बिषे निरन्तर अयुक्तही होता है ऐसे अविवेकी अकुशल सारथीवाला जो रथी है "तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि" [तिसकी इन्द्रियां वश नहीं होतीं] अर्थात् जिसका बुद्धिरूपी सारथी विवेकवान् नहीं होता तिस रथी के इन्द्रियांरूपी घोड़े जो अतिचंचल बलवान् पृथक् पृथक् मार्ग के निरंतर चलनेवाले हैं सो उस पुरुष के वश नहीं होते तातें जहां उन अश्वोंकी इच्छा होती है तहांहीं शरीररूपी रथको सहित सारथी रथी के संसाररूपी गर्तबिषे जाय पटकते हैं कि

जहां जन्म मरण जरा रोग राग द्वेष काम क्रोध क्षुधा पिपासा आदिकों के अनेक क्लेश हैं तिन नानाप्रकार के क्लेशों को पाय के रात्रि दिन रोवतेही रहते हैं "(दुष्टाश्वा इव सारथेः) [सारथी के दुष्ट अश्वोंवत्] अर्थात् जैसे किसी धनवान् पुरुष ने अज्ञानी पुरुषको अर्थात् जो पुरुष रथचर्या में निपुण नहीं अरु अश्वोंको यथोचित चलावने में अशक्त अरु बागको भली प्रकार ग्रहण करना छोड़ना रोकना जाने नहीं अरु मानता है अपनेको महाचतुर सारथी तिसको अपने रथका सारथी किया अरु जब उस सारथीको अपने रथके चलावनेकी आज्ञा किया तब उस अविवेकी सारथीने प्रथम घोड़ों की बाग पकड़ के उनको चलाया तिसही काल वह नवीन अदन्त अत्यन्त बलवान् घोड़े सो अपने अपने वेगसे चले अरु उसही काल उस अकुशल सारथीके हाथसे घोड़ोंकी बाग छूटगई तब वे घोड़े रथीके इच्छित मार्गको छोड़के अपने अपने बलसें अपने अपने मार्गमें भागचले अरु जिधरको जानारहा उस मार्गको त्याग के किसी महाअंधकूप गर्तविषे रथको जायडाला तब वह रथ टूटगया अरु रथी सारथी घोड़ेआदि मरणपर्यन्त के क्लेशको पाय नानाप्रकार रुदन के शब्द करनेलगे। हे सौम्य ! उक्त प्रकार अविवेकी सारथीवाला रथी सारथी की अविवेकता से मरणपर्यन्त के महान् क्लेशों को भोगता है हे नाचिकेतः ! तैसेही जिस पुरुषका बुद्धिरूपी सारथी आप अविवेकी होतसंते विवेकताका अभिमान करके इस सारथी शरीररूपी रथको मोक्ष-मार्ग की ओर चलावता है अरु अपनी अविवेकता को न विचार विवेकशाली सारथी की देखा देखी आप भी प्रथम मनरूपी बागको ग्रहणकर इन्द्रियांरूपी घोड़ोंको वैराग्यरूपी चाबुक का प्रहार करता है तब वह इन्द्रियांरूपी घोड़े उस ताड़ना को न सहन करके अपने अपने बलसे अपने अपने मार्ग में रथको खींचनेलगे अरु उसही समय उस अविवेकी

सारथी के हाथसे मनरूपी बाग भी छूटगई तब वह घोड़े अत्यन्त वेगकरके अपने अपने अभीष्टमार्ग को भाग चले तहां यह विशेषता है कि दश घोड़े अरु पांच मार्ग तहां एक एक मार्ग विषे दो दो घोड़े अपनी अपनी ओरको खींचते हैं तब जिस समय उन अतिबलवान् दश घोड़े जो पांचमार्ग में चलने वाले हैं तिनका रोकना जोकि विवेकवती बुद्धिकोभी दुःसाध्य है सो अविवेकी बुद्धिरूपी सारथी से कदापि रोके जाते नहीं तब अन्तमें वह रथ कि जिसका बुद्धिरूपी सारथी रथचर्या में कुशल नहीं सो संसाररूपी अन्धकूप विषेही जाय गिरते हैं तिस विषे नाना प्रकारके योग वियोग राग द्वेष काम क्रोध जरा रोगादिरूपी कंटक पाषाण सिंह सर्पादिकों के क्लेशकरके सर्वदा जन्म मरणादिकों के दुःखकोही भोगते हैं । ताते हे सौम्य ! जिस पुरुष का बुद्धिरूपी सारथी शरीररूपी रथ के रथीको सहित इन्द्रियरूपी घोड़ों के मोक्षमार्ग में चलावने को विवेकवान् नहीं सो पुरुष वारंवार संसारकूपमेंही गिरते हैं अरु नानाप्रकार के क्लेश भोगते हैं। ताते तात्पर्य यह है कि जब आप अपनी बुद्धिरूपी सारथीको अत्यन्त कुशल करोगे तब अपने शरीररूपी रथ करके अपने अभीष्टपदको अपने बिषेही प्राप्त होगे ताते मुमुक्षुको प्रथम अपने बुद्धिरूपी सारथी को विवेकसम्पन्न करना योग्य है। हे नाचिकेतः ! अब जिसप्रकार विवेकवती बुद्धिरूपी सारथीवाले मुमुक्षु पुरुष के इन्द्रियांरूपी घोड़े स्ववश होते हैं तिसको भी श्रवण करो ५ ॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ॥ तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ६ ॥

हे नाचिकेतः ! "यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा" [जो कि सदा युक्त मनकरके विज्ञानवान् होता है] अर्थात् जो कि प्रथम कहा अविवेकी बुद्धिरूपी सारथीवाला पुरुष

तिससे विपरीत सर्व रथचर्या में निपुण विवेकवान् बुद्धिरूपी सारथीवाला होता है अरु मनरूपी रस्सी "डोरबाग" निरन्तर जिसके हाथमें रहती है अर्थात् सदा समाहितचित्त रहता है "तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः" [तिसकी इन्द्रियां श्रेष्ठ अश्ववत् सारथी के वश होती हैं] अर्थात् तिसकी जो अश्वस्थानापन्न दश इन्द्रियां हैं कि जो शरीररूपी रथको लेचलते हैं सो श्रेष्ठ अश्ववत् अर्थात् 'जैसे किसी परम चतुर विवेकवान् पुरुषकरके दमन किये घोड़े उसके वश होते हैं' तैसे बुद्धिरूपी सारथी के वश होती हैं। हे सौम्य! इसहीसे विद्वानोंने मुमुक्षुके अर्थ इन्द्रियोंका दमन करना आग्रह सहित नियम किया है "शान्तो दान्त उपरतास्तितिक्षुः समाहितो भूत्वा" इत्यादि। हे नचिकेतः! अब अविज्ञात सारथीवाले अरु सविज्ञात सारथीवाले रथी को अर्थात् जिस पुरुष का पूर्वोक्त बुद्धिरूपी सारथी अविवेकी है अरु जिस पुरुषका उक्त सारथी सविवेकी है तिन दोनों पुरुषों को अपने अपने सारथी द्वारा जो जो फल प्राप्त होता है तिसको भी श्रवण करो ६॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः॥ न स तत्पदमाप्नोति सꣳसारं चाधिगच्छति ७॥

हे नचिकेतः! "यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः" [जोकि विवेकरहित मनकी एकाग्रतासे रहित सदा अपवित्र होता है] अर्थात् जिस पुरुषका बुद्धिरूपी सारथी रथचर्या में कुशल नहीं होता अरु संकल्पविकल्पात्मक जो इन्द्रियांरूपी घोड़ों की मनरूपी बाग सो जिसके हाथ में नहीं अरु निरन्तर अपवित्र अर्थात् असमाहित होता है। हे नचिकेतः! इसप्रकार जिस पुरुषका बुद्धिरूपी सारथी विवेकवान् गृहीतमन समाहित नहीं। "न स तत्पदमाप्नोति" [सो तिस पदको पावता नहीं] अर्थात् सो रथी प्रथम कहा जो संसार के पार परम अक्षरपद

तिस पदको प्राप्त होता नहीं । सो भी इतनामात्रही नहीं किन्तु "सꣳसारं चाधिगच्छति" [संसारकोही पावता है] अर्थात् जन्म मरण लक्षणरूप जो संसार वारंवार तिसही को प्राप्त होता है अरु नानाप्रकार के क्लेश को भोगता है। हे सौम्य ! जिस जीवात्मा का बुद्धिरूपी सारथी विवेकवान् नहीं होता सो संसारसे नहीं छूटता क्योंकि बुद्धिरूपी सारथी के विवेकवान् न होनेसे इन्द्रियांरूपी जे अतिचंचल बलवान् घोड़े हैं तिनका जो दमन (रोकना) सो होता नहीं अरु उन घोड़ों की जो संकल्पविकल्पात्मक मनरूपी बाग सो उक्त सारथी से यथोचित ग्रहण होती नहीं एतदर्थ अविवेकवान् सारथीवाला रथी संसार के पार होता नहीं हे सौम्य ! इस जीवात्मा का बुद्धिरूपी सारथी के विवेकवान् न होनेके कारणसे न तो उससे इन्द्रियां-रूपी घोड़े रोके जाते हैं अरु न मनरूपी डोरी उसके हाथ में रहती है ताते ऐसे सारथीवाले रथी वारंवार संसारकोही प्राप्त होय नानाक्लेशकोही भोगते हैं। अब उन क्लेशोंका स्वरूप श्रवण करो हे सौम्य ! जिसका बुद्धिरूपी सारथी विवेकी नहीं होता तिसका रथ ब्रह्मविद्यारूप श्रेयोमार्ग को त्यागके अविद्यारूपी प्रेयोमार्गमेंही चलता है तब यह जीव नाना प्रकारकी कामना-रूपी पिशाचिनीके वश भया देवी देवता पितर भूत यक्ष वृक्ष पादुका मन्त्र यन्त्रादिकों को भोगों के निमित्त सेवता है तिस करके कर्मविषयरूपी गारों में गिरता है सो गारभी त्रिगुणा-त्मक हैं तहां जब अविवेकी सारथीवाले रथी जीवका रथ सत्त्वगुणी गारबिषे गिरता है तब यह जीव यज्ञ अग्निहोत्र स्वाध्याय ध्यान धारणा योग समाधि उपासना आदिकोंको करता है तब तिसके फल स्वर्गादिलोकों के उत्तम भोग्य तिन को भोगके पुनः इस लोकबिषे जन्मादिकों के क्लेश भोग के पुनः कर्म करता है। अरु जब जीवात्माका उक्त रथ राजसी गारबिषे गिरता है तब यह जीव नानाप्रकारके जप तप उपा-

सनादि कामुककर्मको करता है अपने को कुछ बननेके अर्थ तब उन कर्मोंका फल यहांहीं प्राप्त होता है अरु धनपुत्रादि पदार्थों के संयोग वियोग कर रागद्वेष पापपुण्य हर्षशोकादि-रूपी यन्त्रोंबिषे पीड़ित होता है पुनः मरता है पुनः जन्मता है वारंवार दुःख सुख भोगता है। अरु जब अविवेकी सारथीवाले जीवात्माका रथ तामसी गाराबिषे गिरता है तब यह जीव वेदशास्त्रसे बाह्यभूत प्रेतादिकोंकी आराधना करता है अथवा सदा आलस्य निद्रा प्रमादकरके धर्म कर्मसे भ्रष्ट परम अशुचि शिश्नोदरपरायणही रहता है तिसके फल नरकादि महान् क्लेशोंको तिरन्तर भोगता है पुनः जन्मता मरता पशुआदि योनिको प्राप्त होय महान् क्लेशको पावताहै। हे सौम्य! इत्यादि जे क्लेश हैं सो बुद्धिरूपी अविवेकी सारथी करके अविद्यारूपी मार्ग में चलनेवालों को होता है। ताते अभिप्राय यह है कि यावत्पर्यन्त ब्रह्मनिष्ठ आचार्य साथ मिलके अपनी बुद्धिरूपी सारथीको विवेकवती नहीं करता तावत्पर्यन्त यह जीवात्मा जन्ममरणरूपी संसार से नहीं छूटता क्योंकि संसार के पार होने का मुख्य साधन इन्द्रिय अरु मनका निग्रहही है सो विवेकशालिनी बुद्धि विना कदापि होता नहीं ताते मोक्षेच्छु को प्रथम अपनी बुद्धिरूपी सारथी को विवेकवती कर्तव्य योग्य है ७ ॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ॥
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ८ ॥

हे नचिकेतः! पूर्वोक्त अविज्ञानवान् सारथी से इतर "यस्तु विज्ञानवान् भवति" [जो कि विवेकवान् होता है] अर्थात् जो पुरुष बुद्धि सारथीद्वारा सच्छास्त्र के विज्ञान विचारकर युक्त होता है अरु "स मनस्कः सदा शुचिः" [एकाग्र मनवाला सदा पवित्र होता है] अर्थात् संकल्पविकल्पात्मक मनरूपी बाग निरन्तर

जिसके हाथमें रहती है अरु तिसही कारणसे इन्द्रियांरूपी घोड़े भी जिसके स्वाधीन रहते हैं अरु सर्वदा ध्यान धारणा विचार समाधि करके पवित्र रहता है "। स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ।" [सो तो उस पदको प्राप्त होताहै (कि) जिससे फेर जन्मता नहीं] अर्थात् सो पुरुष तो उस परमपदको प्राप्त होता है कि जिस पदकी प्राप्ति से पुनः वह विवेकी सारथीवाला रथी जीवात्मा इस जन्म मरणलक्षणवान् संसारविषे जन्म पावता नहीं। ताते हे नचिकेतः ! जिस पदकी आप इच्छा करते हो वह पद जब बुद्धिरूपी सारथी विवेकवान् होता है तबहीं प्राप्त होता है ताते प्रथम आप अपने बुद्धिरूपी सारथी को विवेक-सम्पन्न करिये कि जिस करके अभीष्टपदकी प्राप्ति होय परम शान्तिमान् होवो ८ ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ॥ सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमम्पदम् ९ ॥

हे नचिकेतः ! "। विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः" [जोकि विज्ञानसारथीवाला (अरु) गृहीतमनवाला मनुष्य है] अर्थात् जो जीवात्मा सर्वसाधनसम्पन्न परमविवेकवान् सारथी वाला अरु मनरूपी रस्सीको भलीप्रकार ग्रहण करने में समर्थ अर्थात् गृहीतमन समाहितचित्त सर्वदा पवित्र है सो विद्वान् पुरुष अर्थात् जिसकी बुद्धि विवेकादि साधनसम्पन्न है अरु मन जिसका समाहित निश्चलभावको प्राप्तभया है अरु इन्द्रियां-रूपी घोड़े बाह्यमुख विषयों से फिरके अन्तर्मुख भये हैं ऐसा जो नरशरीराविष्ट जीवात्मा "। सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमम्पदम् "। [सो संसारगति के पारको पावता है सो विष्णु का परमपद है] अर्थात् उक्त साधनसम्पन्न अधिकारी पुरुष है सो संसारगति से पार कहिये रहित जो विष्णुका अर्थात् सर्व-व्यापी जो परब्रह्म परमात्मा वासुदेवादि नामों करके विख्यात

सर्व से परे सर्वका प्रत्यगात्मा सर्व से उत्कृष्टपद है जिसको अपना आप प्रत्यगात्मभाव से अर्थात् सोहमस्मिभाव से प्राप्त होता है हे सौम्य ! जिसका बुद्धिरूपी सारथी चतुर है सो मन इन्द्रियादिकों को अपने अपने विषयों से हटाय के इस शरीररूपी रथको सर्वदा प्रत्यगात्माकीही ओर चलावता है अरु तूभी अपने प्रत्यक् को प्राप्त होने की इच्छा रखता है सो (अस्तु) तथापि उसको तू तब प्राप्त होगा जब अपनी बुद्धिको सर्वसाधनसम्पन्न विवेकशालिनी करेगा। ताते जो तू अपने आप प्रत्यगात्मा की इच्छा रखता है तो अपनी बुद्धिको विवेकशालिनी करने के अर्थ शीघ्र पुरुषार्थ कर ॥ नचिकेतोवाच ॥ हे भगवन् ! यह विवेकशालिनी विज्ञानवती बुद्धि ब्रह्मविद्या के मार्ग से इस जीवात्माको कहां लेजाती है अरु जहां लेजाती है वह देश कैसा है अरु जिस विष्णुपदकी प्राप्ति करावती है तिस का स्वरूप कैसा है यह सर्व आप कृपा करके कहिये ॥ मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः ! जिस पुरुषकी बुद्धि परम विवेकसम्पन्न होती है सो बुद्धि अपने रथी को क्रम करके इस संसार से पार लेजाती है तहां इस पृथिवी से परे जल है जल से परे अग्नि है अग्नि से परे वायु है वायु से परे आकाश है आकाशसे परे महत्तत्त्व है महत्तत्त्वसे परे अव्यक्त है सो इन सर्वको प्रथम प्रथम की अपेक्षा दूसरे दूसरे को कारणत्व होनेसे ब्रह्मत्व है ताते यह सर्व ब्रह्म कहे जाते हैं परन्तु यह सर्व संसार में प्राप्त करनेवाले अपरब्रह्म हैं ताते वह विवेकशालिनी बुद्धि अपने रथी को इन सर्व असत्य ब्रह्मों से बचाय के दूर लेजाती है एतदर्थ तुमको सर्व से दूर जाना है ताते शीघ्र पुरुषार्थ करो ६ ॥

इन्द्रियेभ्यःपरा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥ मनसश्च परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः १० ॥

हे नचिकेतः ! जिस पदको आपने प्राप्त होना है सो पद

महासूक्ष्म है अरु इन स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणात्मक प्रपंच से पृथक् अरु इन सर्वसंघात विषे सर्वका प्रत्यगात्मभाव से प्रकाशित है एतदर्थ वह सर्वसे परे है। हे नाचिकेतः!। "। इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः ।" [इन्द्रियों से परे अर्थ हैं] अर्थात् यह जो देहस्थ इन्द्रियां हैं तिनका प्रत्यक् पदार्थ हैं क्योंकि इन्द्रियां एकदेशी हैं अरु पदार्थ सर्वदेशी हैं ताते इन्द्रियों से परे पदार्थ हैं तिन पदार्थोंका प्रत्यक् अर्थ "गरज" है अरु "। अर्थेभ्यश्च परं मनः ।" [अर्थ से परे मन है] अर्थात् अर्थका प्रत्यक् मन है क्योंकि अर्थ मनके अधीन है अरु मन सूक्ष्मभूतों का कार्य है ताते अर्थ से परे मन है अरु "। मनसश्च परा बुद्धिः ।" [मनसे परे बुद्धि है] अर्थात् मनका प्रत्यक् महासूक्ष्म सूक्ष्मभूतों का कारण बुद्धि है ताते मनका प्रत्यक् मनसे परे है अरु "। बुद्धेरात्मा महान् परः ।" [बुद्धि से परे महान् आत्मा है] अर्थात् सर्व प्राणियोंकी बुद्धि प्रत्यगात्मा होनेसे सर्वसे पर है तथापि बुद्धि का आत्मा सर्वसे बड़ा सर्वलिङ्गशरीरों का समष्टिरूप अव्याकृत का कार्य प्रथम उत्पत्तिमान् सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ जोकि बोध अबोधात्मक अर्थात् ज्ञान अरु क्रिया उभयशक्त्यात्मक तत्व है सो महान् आत्मा बुद्धि से भी परे है। हे सौम्य! इन्द्रियों से परे विषय हैं क्योंकि इन्द्रियां विषय के अधीन हैं अरु विषयों से परे मन है क्योंकि मनके अधीन पदार्थ हैं अरु मन से परे बुद्धि है क्योंकि अतिचंचल संकल्पविकल्पात्मक अनवस्थ जो मन तिसका निश्चय विवेककर्ता बुद्धि है ताते मनका प्रत्यक् बुद्धि है अरु बुद्धि से परे महानात्मा हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा सर्वको धारणकर्ता कि जिसके आश्रय बुद्धिकी वृत्ति विस्मृति में से पुनः स्मृति में आवे है सो बुद्धिका प्रत्यगात्मा हिरण्यगर्भ बुद्धि से भी परे है १० ॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ॥ पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागतिः ११ ॥

हे नचिकेतः ! " महतः परमव्यक्तं " [महान् आत्मासे अव्यक्त परे है] अर्थात् महान् आत्मा जो हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा तिससे भी अव्यक्त जो सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म चराचर जगत् का कारण बीजभूत अव्याकृत अव्यक्त आकाश प्रधान माया आदि नामों से विख्यात सर्वशक्ति की समष्टिता परमात्मा के विषे ओतप्रोत होने से अपृथग्भावसे स्थित (जैसे वटके महासूक्ष्म बीजविषे वटवृक्षशक्ति अभेदता से ओतप्रोतहै वहां यह नहीं कहाजाता कि वटबीजविषे वृक्षशक्ति किसदेश में अरु कितनी है) तैसेही महासूक्ष्म परमात्मा विषे यह नहीं कहाजाता कि किस देश में अरु कितनी है क्योंकि अभेदता से ओतप्रोत है ताते अद्वैत परमात्मामें द्वैतका हेतु नहीं ऐसा जो अव्यक्त नामकरके अव्याकृत पर है अर्थात् हिरण्यगर्भ का प्रत्यक् अव्यक्त महानात्मा हिरण्यगर्भ से परे है । अरु "अव्यक्तात्पुरुषः परः" [अव्यक्त से परे पुरुष है] अर्थात् परम सूक्ष्म अरु महान् अव्यक्तका भी परमाश्रय प्रत्यगात्मा एक चिन्मात्र सत्तासमान पुरुष है तिस परमपुरुष के विषे द्वैतसत्ता का अभाव है तिसको श्रुति कहती है कि हे नाचिकेतः ! " पुरुषान्न परं किञ्चित् " [पुरुषसे कोई भी पर नहीं] अर्थात् उस महासूक्ष्मतर परिपूर्ण प्रत्यगात्मा चैतन्यतत्त्व से किंचिन्मात्र भी अन्य पृथक् वस्तु नहीं । ताते यावत् स्थूल सूक्ष्म कारण कार्यादि कहे हैं तिन सर्वकी " सा काष्ठा " [सो अवधि है] अर्थात् पराकाष्ठा (परमाश्रय) प्रत्यगात्मा अवधि है उसही विषे सर्वकल्पना का पर्य्यवसान है उससे पृथक् सत्तावान् कोई नहीं मूर्खोंके समझावनेके अर्थ उसविषे नानाप्रकार की कार्यकारणादि कल्पना किया है वास्तव में एक अद्वैत चिन्मात्र तत्त्वही अपने आप पूर्णता से आपही सुशोभित हो रहा है ताते सोई सर्वकी पराकाष्ठा अवधि है । अरु " सा " [सोई] मुमुक्षुओंको संसार से पार होने के अर्थ " परागतिः "

[सर्वोत्तम गति है] अर्थात् हे सौम्य ! अव्याकृतादि सर्व कार्य-कारणात्मक जगत्का जो परमाश्रय सर्वाधिष्ठान परमपुरुष है सोई अव्याकृतादि तृणपर्यंत सर्वका अपना आप प्रत्यगात्मा है तिसको अपना आप आत्मत्व से अनुभव करना सोई मुमुक्षु को परमोत्तम गति है इससे अन्य जो गति है सो अविद्याजन्य सर्व अवगति है ताते इस सर्वोत्तम गतिकी प्राप्तिके अर्थ पुरुषको अवश्य पुरुषार्थ कर्तव्य है ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! जोकि इन्द्रियादि स्थूल से अव्यक्तादि महासूक्ष्म सर्व कार्यकारणसे परे अक्षर आत्मा पुरुष है सो सर्वसे अतिदूर होगा अब हम सरीखे को उसकी प्राप्ति कहां ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! ऐसा मत कहो वह सर्वका प्रत्यक् अपना आप है ताते देशकाल वस्तुके व्यवधान से रहित है एतदर्थ उसकी प्राप्ति अतिसुगम है परन्तु सूक्ष्मबुद्धिवाले को है अरु जे अविवेकी स्थूलबुद्धिवाले असंस्कृतात्मा हैं तिनको उसका दर्शन अतिदूर अरु अतिकठिन है ११॥

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ॥ दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः १२ ॥

हे नचिकेतः ! " एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते " [यह आत्मा सर्व भूतोंविषे गूढ़भया प्रकाशता नहीं] अर्थात् यह जो अव्याकृतादि सर्व से परे सर्वकी अवधि चैतन्यपुरुष तुम्हारेप्रति कहा है सो ब्रह्मादि तृणपर्यन्त सर्व चराचर भूतों विषे छिपाभया है अर्थात् मन बुद्धि प्राण इन्द्रिय शरीरादि संघातविषे मिलके तत्तद्धर्मवान् कर्ता भोक्ता सुखी दुःखीभाव से आवृत भयासा भासमान जो आत्मा सो साधनहीन असंस्कृत अविवेकी मूढ़पुरुषों को अपना आप प्रत्यक् सर्वसे भिन्न होतसन्ते भी यथार्थ अकर्ता अभोक्ता सच्चिदानन्दरूप से अनुभवमें आवता नहीं सो इतनामात्रही नहीं किन्तु अनात्मसंघातके धर्मको अज्ञानके वश अपने विषे मानते हैं कि हम

ब्राह्मण क्षत्रियआदि जातिमान् कर्ता भोक्ता दुःखी सुखी पापी पुण्यी परमेश्वर के किंकर अतितुच्छ जीव हैं ताते हे नचिकेतः! इन पुरुषों को यह आत्मा दूरसेभी दूर है कई कल्प व्यतीत होगये इनको अद्यावधि उसकी प्राप्ति नहीं भई क्योंकि इन पुरुषों का बुद्धिरूपी सारथी चतुर नहीं जो इनको वड़े वड़े नदी नद नाले पर्वत जंगल गार आदि विषमस्थानोंसे बचायके लेजाय। हे नचिकेतः! यह अहंता ममतारूपी बड़े उच्च पर्वत हैं मोहरूपी महागंभीर नद हैं तृष्णारूपी बड़ी वेगवती नदीहै कामनारूपी बड़ागर्त है कर्म बड़ाभारी अरण्य है इन विषे अटके हुये इन्हीं को असंख्यकाल होगया अद्यावधि इन सर्वको लंघके उस विष्णुपदको प्राप्त भये नहीं कि जहांके गये फेर इन क्लेशोंविषे आवते नहीं। ताते अविवेकी पुरुषको अपना आप शुद्ध शान्त आनन्दघन आत्मा प्रकट होते सन्ते भी भान होता नहीं। सोई श्रीभगवद्गीताविषे श्रीकृष्णका वाक्य है तथाच। " नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः " इत्यादि ॥ प्र० ॥ हे भगवन्! श्रुति कहती है कि ' मत्वा धीरो न शोचति ' अरु आप कहतेहौ कि ' न प्रकाशते ' आत्मा भान होता नहीं। सो इसको भी कृपा करके कहिये॥ उ० ॥ हे सौम्य! जोकि साधनहीन असंस्कारी विवेकशून्य पुरुष हैं तिन को आत्मा आत्मत्व करके भान होता नहीं। अरु जे साधनसम्पन्न संस्कारी पुरुष हैं तिनको " दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः " [एकाग्रयुक्त सूक्ष्म बुद्धिसे सूक्ष्मदर्शियों करके दृश्य है] अर्थात् एकाग्रचित्त करके अरु उपनिषद् ब्रह्मविद्या जोकि परमसूक्ष्म वस्तुको निरूपण करती है तिसके सूक्ष्मविचार से भई जो सूक्ष्मबुद्धि तिस सूक्ष्मबुद्धि करके सूक्ष्मबुद्ध पुरुष अर्थात् ' इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः ' इत्यादि श्रुतियों के वाक्यप्रमाण एक से एक सूक्ष्मवस्तुके परम्परा विचार से सूक्ष्मवस्तु के अनुभव करनेका विवेक प्राप्तभयाहै जिसको तिस सूक्ष्म;

दर्शी विद्वान् पुरुष करके महासूक्ष्म अपना आप प्रत्यगात्मा दृश्य है अर्थात् साक्षात् " सोहमस्मि " भावसे अपना आप अनुभव में आवता है अन्यप्रकार नहीं ॥ ५० ॥ हे भगवन् ! अब उस महासूक्ष्म अपने आप प्रत्यगात्माकी प्राप्तिका उपाय आप कृपा करके कहिये कि जिसकरके मैंभी अपने आप प्रत्यगात्माको प्राप्त होवों १२ ॥

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ॥ ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि १३॥

हे नचिकेतः ! " यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञः " [प्राज्ञ (बुद्धिमान्) वाक्को मनविषे लय करे] अर्थात् साधनसम्पन्न परम विवेकी प्राज्ञपुरुष है सो वाक् उपलक्षण करके समस्त इन्द्रियों को उनके प्रत्यक् सूक्ष्म मनविषे लय करे अरु " तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि " [तिस मनको ज्ञानआत्मा (बुद्धि) विषे लय करे] अर्थात् तिस मनको कि जिस विषे सर्व इन्द्रियां लय किया है विज्ञानात्मा बुद्धि विषे लय करे क्योंकि मनकी प्रकाशक प्रत्यक् विज्ञानात्मा बुद्धि है अरु " ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत् " [ज्ञान (बुद्धि) को महान् आत्मा हिरण्यगर्भ विषे लय करे] अर्थात् उस विज्ञानात्माबुद्धिको कि जिसविषे इन्द्रियां सहित मन लय किया है तिसको महानात्मा प्रथमज हिरण्यगर्भ तिस विषे लय करे अर्थात् सर्वबुद्धियोंका प्रकाशक धारणाकर्ता समष्टि सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ तिस महान् आत्माविषे व्यष्टि विज्ञानात्मा बुद्धिको लय करे अरु " तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि " [तिस महानात्माको शान्तात्मा (साक्षी) विषे लय करे] अर्थात् तिस हिरण्यगर्भको कि जिस विषे इन्द्रिय मन समेत बुद्धिको लय किया है तिसको शान्तात्मा अर्थात् सर्व विशेष्य विशेषणादि नाम रूप क्रिया समाप्त भई है जिस विषे ऐसा जो सर्वान्तर सर्व प्रत्ययका प्रकाशक साक्षी सर्वका प्रत्यगात्मा चैतन्य तिस

विषे सहित कारण अव्यक्तके लय करे । हे सौम्य ! इस प्रकार साधनसंस्कारसम्पन्न विवेकवान् सूक्ष्मदर्शी पुरुष स्थूलका सूक्ष्ममें इस परम्परासे लय चिंतवन करके सर्व की अवधि जो सर्वका प्रकाशक प्रत्यगात्मा तिसको साक्षात् अपना आप अनुभव कर शान्तात्मा होते हैं अरु साधनसंस्कार रहित अविवेकी पुरुष बुद्धिकी कल्पना तर्कादि करके उस आत्माको प्राप्त होते नहीं ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! वेदभगवान् इन पुरुषोंको अविद्यानिद्रासे कैसे जगावता है सोभी आप आज्ञा करिये ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! "जैसे यात्रीलोग रात्रिके समय सराय आदि स्थानों में जाय टिकते हैं तब प्रथम उस स्थानपति बूढ़ी माई "भठियारी" से कहतेहैं कि हे माई ! अब हम यहां तेरे स्थानमें सोवते हैं परन्तु हमको जाना दूर है ताते तुम मुझको जल्दी जगावना जिसमें हम यहां सोते न रहें हे सौम्य ! इस प्रकार कहके वह यात्रीलोग शयन करते हैं तदनन्तर उनको जगावनेका समय उस बूढ़ीमाई ने देखा तब वह उन सोयेहुये को जगावती भई कि हे सोवनेवाले यात्रियो ! अब उठो देखो तुमको दूर जाना है अब रात्रिभी थोड़ी है ताते शीघ्र उठो । तब वह निद्रावश सोवते पुरुष कहते हैं कि हां उठतेहैं अभी तो रात्रि बहुत है तब पुनः वह माई सकोप कहती है कि हे मूर्खो ! तुम क्यों नहीं उठते देखो तुम्हारे साथी सब चलेजाते हैं पीछे तुमको जाना कठिन होगा अरु तुमको जाना दूरहै आगे मार्ग भी कठिन है अरु उस मार्गके जानेवालोंका खोजभी नहीं मिलता क्यों जो वह मार्गसे रहित हैं ताते तुम्हारा रस्ता कठिन अरु देश दूर है एतदर्थ शीघ्र उठो अपने रथ अश्व सारथीको सावधान कर साथियों से जा मिलो यह तुम्हारे भलेवास्ते मैंने कहा है" । हे सौम्य ! इसप्रकार वह माई आग्रहसहित कोप करके कहती है तब वह यात्री उठके अपने मार्गको चलते हैं तैसेही वेदभगवान् आचार्य द्वारा होयके जगावता है ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! वेद इन पुरुषोंको क्या कहता है ॥

उ० ॥ हे सौम्य ! अब वेद इन पुरुषोंको जो कहता है सोई मृत्युभगवान् नचिकेता प्रति कहते हैं तिसको सावधान होय श्रवण करो १३ ॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ॥ क्षुरस्य धारा-निशिता दूरत्यया दुर्गम्पथस्तत् कवयो वदन्ति १४ ॥

हे नचिकेतः ! वेद कहता है कि हे मनुष्यो ! जो तुमको दुःख-मय संसारसे पार होनेकी इच्छा है तो "। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।" [उठो जागो श्रेष्ठको प्राप्त होय (आत्माको) जानो] अर्थात् उठ खड़ेहो आत्मज्ञानके सम्मुख हो यह जो तुम संसाररूपी सराय विषे अविद्यारूपी घोर निद्राके वशभये मनुष्य शरीररूपी चारपायी कि जिस विषे चारवर्णरूपी पाये अरु चार आश्रमरूपी सेरा पाटी लगे हैं अरु अनेक संचित संसकाररूपी रस्सी करके बुनीहुई है तिसपर अनादि कालके सोये पड़े हो सो अब सोवने का समय नहीं ताते जाग्रत् भावको प्राप्त हो अरु हे पुरुषो ! श्रेष्ठ जे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सर्वोत्तम आचार्य हैं तिनको प्राप्त होवो आचार्य शरण आयेको अपना आप प्रत्यगात्मा सर्वान्तर साक्षीका "तत्त्वमसि" भावसे उपदेश करते हैं तिसको तुम जानो । हे नचिकेतः ! इस आत्म-ज्ञानकी उपेक्षा न करके उठ खड़े हो अरु सावधानी से शीघ्र पुरुषार्थ करो यह मातावत् परम उपकार करती श्रुति कहती है ताते श्रुतिवाक्य अंगीकार कर शीघ्रही ब्रह्मवेत्ता आचार्यको प्राप्त हो उनके पश्चात् तुमको संसार से पार होना अति कठिन होगा क्यों जो वह सर्व अपने अपने रथारूढ़ होय विज्ञान सारथीकर संसार के पार अपने बोधविषे चलेजाते हैं ताते तुमभी उनके साथ मिलके निकलचलो साथ विना जाने को समर्थ न होगे क्योंकि यह ज्ञानरूपी मार्ग अत्यन्त सूक्ष्म अरु कठिन है जैसे "। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया ।" [छुरेकी

धार तीक्ष्ण करी भई दुःख से नाश होती है] अर्थात् छुरे की धार तीक्ष्ण शान चढ़ी भई अतिसूक्ष्म दुरत्यय अर्थात् दुःखसे भी उसपर चलना कठिन है तैसेही " दुर्गम्पथस्तत् कवयो वदन्ति " [बुद्धिमान् तिस (ज्ञान) मार्गको दुर्गम कहते हैं] अर्थात् ज्ञानवान् मेधावी पुरुष जोकि वेदवेत्ता आचार्य हैं सो तिस ज्ञानरूपी मार्गको कि जिस मार्ग के चलने से परमोत्तम विष्णुपदकी प्राप्ति होती है अतिसूक्ष्म अरु कठिन है ऐसा कहते हैं क्योंकि तिसबिषे जो चलना है सो अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि अरु आचार्य की कृपा तिस बिना कदापि होता नहीं। हे सौम्य ! इसप्रकार साक्षात् वेद भगवान् इन पुरुषोंपर दया करके जगाय खड़ा करता है क्योंकि उस आत्मतत्त्वको साक्षात् अपना आप अनुभव करके अविद्यासे तरके इन्होंको शान्तात्मा होना है अरु वह आत्मा महासूक्ष्म है ताते उसकी प्राप्तिका ज्ञानरूपी मार्ग भी अतिसूक्ष्म अरु कठिन है एतदर्थही सूक्ष्मबुद्धि बिना उस मार्ग में चलना बने नहीं अरु आचार्य बिना सूक्ष्मबुद्धि प्राप्त होती नहीं ताते साधनपूर्वक आचार्यको प्राप्त होय ज्ञानमार्ग में अपने आप प्रत्यगात्माको प्राप्त होना योग्य है ॥ प्र० ॥ हे प्रभो ! वह आत्मा कैसा सूक्ष्म है सो आप कहिये १४ ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसन्नित्यमगन्धवच्च यत् ॥ अनाद्यनन्तम्महतः परन्ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते १५ ॥

हे नचिकेतः ! सबसे स्थूल पृथिवी है कि जिसबिषे शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध पांचों गुण इन्द्रियों के विषय हैं तिस पृथिवी से सूक्ष्म जल है जो उस बिषे एक गन्धगुण नहीं अरु जल से सूक्ष्म अग्नि है जो उस बिषे गन्ध अरु रस यह दो गुण नहीं अरु अग्नि से सूक्ष्म वायु है जो उस बिषे गन्ध रस रूप यह

तीन गुण नहीं अरु वायुसे सूक्ष्म आकाश है जो उस विषे गन्ध रस रूप स्पर्श यह चार गुण नहीं इन पांचोंसे आत्मा महासूक्ष्म है जो उस विषे पांचों गुण नहीं इसही से आत्माको श्रुति ने "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसन्नित्यमगन्धवच्च यत्" [जो (आत्मा) शब्दरहित स्पर्शरहित रूपरहित अव्यय है (तैसे) रसरहित नित्य (अरु) गन्धरहित है] अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इन पांचों गुण से रहित शुद्ध निर्गुण प्रतिपादन किया है अर्थात् जिस विषे शब्दादि सूक्ष्म गुण नहीं तिसविषे आकाशादि स्थूलभूत कहां किन्तु कदापि नहीं इसही से वह आत्मा इन्द्रियोंका विषय नहीं एतदर्थही वह आत्मा अव्यय है अर्थात् क्षयको प्राप्त होता नहीं जो गुणवान् होता है सोई नाशवान् होता है अरु यह आत्मा सर्वगुणों से रहित अव्यय है इसही से नित्य है उसका आदिकारण कोई नहीं जिसका जिसका आदिकारण होता है सोई सो कार्य अपने अपने कारणमें लीन होता है अरु इस आत्मा का आदिकारण कोई नहीं कि जिस विषे इसका लय होय ताते आत्मा नित्य है अरु "अनाद्यनन्तम्महतः परं ध्रुवं" [अनादि है अनन्तहै महत्तत्त्वसे पर ध्रुव है] अर्थात् आत्मा अनादि है इसका आदिकारण कोई नहीं इसही से यह अनन्त है अर्थात् नहीं है अन्त जिसका सो कहिये अनन्त सो आत्माही अनादि नित्य अनन्त है अरु महत् जे हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा किंवा बुद्धि तिससे परे परम उत्कृष्ट है अर्थात् बुद्धि आदि सर्वका प्रकाशक कूटस्थ अचल अमर अभय अक्रिय सर्व विशेष्य विशेषणसे रहित निर्विशेष सर्वका अपना आप प्रत्यगात्मा है यही परमानन्दरूप ब्रह्महै यही सर्व संसारसे पार सर्वको शान्ति का स्थान है। हे नाचिकेतः! "निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते" [तिसको जानके मृत्युके मुख से छूटता है] अर्थात् तिस अपने आप प्रत्यगात्माको विचार अनुभवद्वारा सोहमस्मिभाव से

प्राप्त होके काम कर्म लक्षण रूप संसारमें वारंवार संसृतिका कारण अविद्या नाम्ना जो मृत्यु तिससे भली प्रकार छूटता है अर्थात् मृत्यु से रहित अजर अमर अक्रिय परमानन्द ब्रह्म-रूपही होता है ॥ हे सौम्य ! इस प्रकार समझायके अविद्या-निद्रा से जगावनेवाला परमदयालु एक वेदही है जो पुरुष वेद की इस उदारवाणी को श्रवण करके जागा है सोई धन्य है वोही पुरुष अविद्यारूपी मृत्यु से छूटता है । अरु जो पुरुष वेद के इस उदारवाक्य को सुनके जागा नहीं सो पापात्मा मृत्यु के भय सों कदापि छूटता नहीं ताते हे सौम्य ! जो तुझको मृत्यु के भय से छूटने की अरु परमानन्दप्राप्ति की इच्छा है तो वेद के वाक्यानुसार उठके ब्रह्मवेत्ता आचार्य साथ मिलके आत्मज्ञान के निमित्त पुरुषार्थ करना योग्य है आगे जो तेरी इच्छा । हे सौम्य ! अब वेद भगवान् के कहेहुये आत्मविज्ञान की स्तुति करते इस तृतीयावल्ली पर्यन्त प्रथमाध्याय की पूर्ति करते हैं १५ ॥

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् ॥ उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते १६ ॥

हे नचिकेतः ! हे सौम्य ! " नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् " [नचिकेता करके प्राप्तभये सनातन मृत्यु के कहे आख्यान को] अर्थात् नचिकेता को प्राप्तभया जो सना-तन वेद करके प्रतिपाद्य मृत्यु भगवान् करके उपदेश किये आख्यान को । अर्थात् यह जो उपनिषद् ब्रह्मविद्या मृत्यु भगवान् करके प्रकाशित है सो महत् आदि पुरुष करके प्र-णीत वेदविषे अनादि है कुछ मृत्यु भगवान् से उत्पन्न नहीं किन्तु मृत्यु भगवान् करके नाचिकेता द्वारा इस मनुष्यलोक में प्रकाशित भई है ताते सनातन है । तिसको " उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते " [बुद्धिमान् पुरुष पढ़के पुनः

श्रवण करके ब्रह्मरूप लोकविषे महिमा को पावता है] अर्थात् उक्त ब्रह्मविद्या को जो बुद्धिमान् विवेकी पुरुष सार्थ पढ़ता है वा ब्रह्मवेत्ता आचार्यद्वारा श्रवण करता है सो ब्रह्मभाव को प्राप्त होय सर्वकरके पूजनीय होता है १६ ॥

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि ॥ प्रयतः श्राद्ध-कालेवा तदानन्त्याय कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति १७

इति प्रथमाध्याये तृतीया वल्ली ३ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः १ ॥

हे नचिकेतः ! हे सौम्य ! " य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्म-संसदि " [जो इस श्रेष्ठ गुह्यविद्या को ब्राह्मणों की सभा विषे सुनावे] अर्थात् जो कोई विद्वान् पुरुष अपने सर्वोत्तम संसारकी बाहुल्यता करके इस वल्लीत्रयात्मक ग्रन्थ को सो कैसा है यह ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट परमगोप्य (छिपा) है केवल तुम सरीखे अधिकारी प्रतिही प्रकाशित होता है अरु अन्य साधनहीन असंस्कृतात्मा पुरुष को इसका दर्शन भी अति कठिन है । तिस ग्रंथको ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणकी सभाविषे श्रवण करावे " प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते " [अथवा श्राद्धकालमें पवित्र होयके सुनावे तब सो श्राद्ध अनन्तफल के अर्थ होता है] अथवा श्राद्धकाल में परमगुह्य नाचिकेत विद्याके ज्ञाता ब्राह्मणों के भोजन समय पवित्र होयके यजमान को श्रवण करावे तब सो श्राद्ध अनन्तलक्षणवान् फल देने के अर्थ में समर्थ होता है । तदानन्त्याय कल्पत इति । यह द्वि-वचन अध्यायपरिसमाप्ति के सूचनार्थ है १७ ॥

इति तृतीया वल्ली ३ ॥

इति कठोपनिषदि प्रथमोऽध्यायःसमाप्तः १ ॥

अथ द्वितीयाध्याये प्रथमावल्ली प्रारभ्यते ॥ शिष्य उवाच ॥ हे गुरो ! जबकि महासूक्ष्म सर्वभूतोंबिषे व्याप्त जो चैतन्य आत्मा सो स्थूल बुद्धिको भान होता नहीं तब उसका भान कैसे होय सो कहिये ॥ गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य ! पूर्व तृतीयावल्ली की बारहवीं श्रुति विषे कहाहै 'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या' सूक्ष्मबुद्धि करके वह सर्वान्तर अपनाआप आत्मा अनुभव होता है। हे सौम्य ! एतदर्थ बुद्धिकी सूक्ष्मता होनेके विषय में जो प्रतिबन्ध है कि जिसके होते संते सूक्ष्मबुद्धिपूर्वक आत्मा अपना आप भान होता नहीं तिस प्रतिबन्ध को इस चतुर्थवल्ली के पूर्व में देखावते संते तिसके अभाव से आत्मदर्शन देखावते हैं तहां जिज्ञासु को आत्मज्ञानार्थ जोकि परमश्रेयोरूप है तिस विषयक प्रतिबन्ध के अभावार्थ अवश्य पुरुषार्थ कर्तव्यहै ॥ प्र० ॥ हे प्रभो ! उस प्रतिबन्धको आप कहिये कि जिसके अभावार्थ अवश्य पुरुषार्थ कर्तव्य है ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! भगवान् वैवस्वतद्वारा आपवेदने नचिकेता से कहा है सो श्रवण करो ॥

ॐ पराञ्चिखानि व्यतृणात् स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् ॥ कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् १ ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः ! अब एक अनादि प्रतिबन्ध को श्रवण करो यह जो "पराञ्चिखानि" [सर्वदा बाह्यको जाने वाली श्रोत्रादि इन्द्रियां] अर्थात् सर्वदा बाह्य अपने अपने विषय प्रति जानेवाली जे वागादि इन्द्रियां तिनको खानि कहते हैं 'जैसे पर्वत किंवा पृथिवी बिषे अनेक खानि होती हैं तिनबिषे अनेक पदार्थ पूर्ण होते हैं' तैसे यह शरीररूपी पर्वत है तिसबिषे श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियां खानि हैं तिनबिषे नानाप्रकारके उत्तम मध्यम कनिष्ठ अधम शब्दादि विषयरूप पदार्थ की पूर्णता है। अर्थात् यावत् शब्द हैं तावत् सर्व श्रोत्रबिषे रहते हैं यावत् रूप हैं

तावत् सर्व चक्षुविषे रहते हैं यावत् रस हैं तावत् सर्व रसनाविषे रहते हैं यावत् गंधहैं तावत् सर्व घ्राणविषे रहते हैं यावत् स्पर्श हैं तावत् सर्व त्वचाविषे रहते हैं। तथाच "सर्वेषां शब्दानां श्रोत्रमेकायनमेवश्च" इत्यादि प्रमाणसे। ताते इन इन्द्रियोंको खानि कहते हैं सो इन इन्द्रियोंका प्रवाह अनादिकालसे बहिर्मुख विषयों प्रति चलता है ताते विना इनके प्रवाह को रोके आत्मा की प्राप्ति नहीं ताते प्रथम इनको "।व्यतृणात्।" [हनन करे] अर्थात् विषयों से रोकके अन्तर्मुख करे क्योंकि इनकी बहिर्मुखताही आत्मलाभ में प्रतिबन्ध है ताते प्रथम इन इन्द्रियों के बहिर्मुख स्वभाव को विचार विवेकरूप पुरुषार्थ से नष्ट करे क्योंकि इनके नष्ट करनेसेही यह पुरुष "। स्वयंभूः।" [स्वयंभू] अर्थात् सदा स्वतंत्र स्वयं परमात्माही है ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! इन इन्द्रियों का बहिर्मुख प्रवाह स्वभाविक है किंवा किसीका चलाया हुआ चलता है ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! ये स्वतंत्र नहीं इन जीवोंके जे अनादिकाल के अध्यास हैं सोई प्रारब्धरूप होयके इन इन्द्रियों को बहिर्मुख प्रवाह देते हैं "। तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।" [एतदर्थ बहिर् देखती हैं अन्तरात्मा को नहीं] अर्थात् एतदर्थ यह इन्द्रियां अनात्मभूत जे शब्दादि विषय तिनहीं को प्राप्त होती हैं तिस कारण से अपने प्रत्यगात्माको प्राप्त होती नहीं। अर्थात् ये सर्वजीव अपने चलाये बहिर्मुख इन्द्रियों के अध्यासरूप प्रवाह तिस विषे गिरके विषयों की ओर को बहे जाते हैं अब इस प्रवाह में इनको यह अवकाश नहीं जो ये अपने आप प्रत्यगात्मा को साक्षात् अनुभव करें ताते आत्मजिज्ञासु महावाक्यों के श्रवण मनन निदिध्यासन के अभ्यासरूप पुरुषार्थ करके इन इन्द्रियों के वहिर्मुख प्रवाह को रोके। हे नाचिकेतः! "। कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्।" [कोई धीर पुरुष प्रत्यगात्मा को देखता है] अर्थात् कोई एक जो विरला धीर पुरुष है सो अपने आप

प्रत्यगात्मा को सर्वात्मभाव से देखता है ॥ प्र० ॥ हे प्रभो! वह कौन धीर पुरुष है जो अपने आप आत्मा को सर्वात्मभाव से देखता है ॥ उ० ॥ "[आवृत्तचक्षुः]" [फिरी हैं चक्षुरादि इन्द्रियां] अर्थात् फिरी भई हैं श्रोत्रादि इन्द्रियां भलीप्रकार शब्दादि विषयों से जिसकी सो पुरुष देखता है। हे सौम्य! जैसे ईश्वर ने नदियों के प्रवाह चलाये हैं तैसेही अनादिकाल से चलते हैं तिस प्रवाह को कोई एक परम पुरुषार्थी राजा बन्ध बांधकर बड़े पुरुषार्थ से लौटके अपना प्रयोजन सिद्ध करता है तैसेही यह जो इन्द्रियों का प्रवाह अनादिकाल से अनात्मभूत विषयों प्रतिही चलता है तिस प्रवाह को जब कोई एक परमपुरुषार्थी पुरुष वैराग्यरूपी दृढ़ बन्ध बांधकर अन्तर्मुख आत्मा की ओर चलावता है तब वह धीर पुरुष अपने आप प्रत्यगात्मा को देखता है। ताते तुम भी जब वैराग्यरूपी बन्ध बांध के अपनी इन्द्रियों को प्रवाह विषयों से हटाय आत्मा की ओर अन्तर्मुख लेआवोगे तब अपने आप आत्मा को प्राप्त होगे ॥ प्र० ॥ हे प्रभो! वैराग्यादि महाप्रयास करके इन्द्रियों को अन्तर्मुख कर जो अपने आप प्रत्यगात्मा को देखता है सो क्या इच्छा धार के देखता है ॥ उ० ॥ "[अमृतत्वमिच्छन्]" [मोक्षकी इच्छा से] अर्थात् अपने आपको जन्म मरण से रहित अजर अमर अभयपद की प्राप्त्यर्थ करता है। सोई इच्छा तुमको भी है ताते तुम भी अन्तर्मुखी होवो १ ॥

पराचःकामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ॥ अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते २ ॥

हे नचिकेतः! प्रथमही जो बाहिर विषयादि अनात्मवस्तु का दर्शन है सोई अन्तरात्मा के दर्शन में प्रतिबन्ध का हेतु

अविद्या है अरु सोई आत्मदर्शन में प्रतिकूल है सो किन पुरुषों को कि जिनकी इन्द्रियां विषयों से लौटके अन्तर्मुख भई नहीं सो पुरुष जो कदापि ज्ञानप्राप्ति के अर्थ वेदान्त का श्रवण भी करते हैं सो भी विषयों के भोगार्थही जानना उन पुरुषों का श्रवणादि सर्व वृथा है ' श्रवणायापि वहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोपि बहवो यन्न विद्युः ' ताते "। पराचःकामाननुयन्ति बालाः ।" [बहिर्गत विषयों को प्राप्त होते हैं अविवेकी] अर्थात् अविवेकी विषयासक्त अल्पबुद्धि पुरुष हैं सो बहिर्गत जे विषयभोग्य तिनके अर्थ अविद्यात्मक काम्यकर्म तिसको करतसन्ते अपने असत्य अध्यासवश अविद्यात्मक बाह्य विषयों कोही प्राप्त होतेहैं एतदर्थ ऐसे जे अल्प बुद्धिअज्ञ पुरुष "। ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् "। [सो विस्तीर्ण के पाशरूप मृत्यु को प्राप्त होते हैं] अर्थात् सो देहेन्द्रिय आदिकों के संयोग वियोग अरु निरन्तर जन्म जरा रोगादि अनेक अनर्थरूप पाशको कि जो सर्व जीवों को सम्यक् बोध विना सर्वद सर्वओर से बन्धन का कारण है तिसही कारणरूप अविद्यात्मक मृत्यु को प्राप्त होते हैं। हे नचिकेतः ! सर्वकोई सर्व का मृत्यु मुझको कहते हैं परन्तु इन सर्वका मृत्यु इनका अविद्यात्मक काम कर्म अध्यासही है अरु "। अथ धीराः ।" [जो धीर पुरुष है (सो)] "। अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवम् "। [नित्य अमरतत्व को जानके] अर्थात् देवताओं के अनित्य अमरभाव से विलक्षण " न वर्धते कर्मणा नो कनीयान् " जो कर्मादिकों से वृद्धि ह्रासको पावता नहीं ऐसे निर्विकार अचल अपने आप आत्मरूप अमरभावकोसाक्षात् सोहमस्मिभाव से जानके "। अध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते "। [इस संसारमें अध्रुव पदार्थ की इच्छा करते नहीं] अर्थात् जो आत्मवेत्ता धीर पुरुष हैं सो अनर्थरूप इस संसार के देवादि अनित्यपदार्थोंमें से किसीभी वस्तु की इच्छामात्र भी करते नहीं क्योंकि अनित्य वस्तुकी

इच्छा नित्य अमररूप आत्मा के दर्शन बिषे प्रतिकूल है ताते पुत्रादि एषणा त्रयसे रहित होते हैं २ ॥

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान् ॥ एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते । एतद्वैतत् ३ ॥

हे भगवन् ! ब्रह्मके जाननेवाले ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण हैं सो जिस के ज्ञानभयेते संसारके किसी भी पदार्थकी इच्छा करते नहीं तिस ब्रह्मका ज्ञान धर्मकर्मके फलवत् परोक्ष होताहै अथवा घट के ज्ञानवत् अपरोक्ष होता है सो आप कृपाकर कहिये ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! ब्रह्म आत्माकी अभेदता होनेसे जो आत्माका अपरोक्षज्ञान है सोई सम्यक् ज्ञान है। हे नचिकेतः ! " येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान् " [जिसकरके रूपको रसको गन्ध को शब्दोंको स्पर्शनको पुनः मैथुनको] अर्थात् सर्व लोक जिस ज्ञानस्वभाववाले आत्मा करके रूप रस गंध स्पर्श अरु मैथुनके निमित्त से भये सुखको " एतेनैव विजानाति " [स्पष्ट जानते हैं] सोई आत्मा है ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! इस शरीरादि संघात से विलक्षण आत्मा करके मैं जानता हौं ऐसा तो लोकनबिषे प्रसिद्ध है नहीं किंतु संघातरूप मैं सर्वको जानता हौं ऐसा सर्वलोक मानते हैं ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! देहादिक संघात शब्दादि विषयवान् अरु ज्ञानका विषय होनेसे इसको ज्ञातृत्व संभवे नहीं अरु जो शरीरादिसंघात रूपादि विषयवान् भासता शब्दादि विषयनको जानता है ऐसा मानोगे तो संघात के बाह्यके रूपादिक भी अपने आपके अरु परस्पर के रूपादि विषयनको जानेंगे परन्तु यह मानना योग्य नहीं क्यों कि यह सर्व जड़ हैं एतदर्थ देहादि संघातके रूपादिकन को लोक इसही देहादि संघात में स्थित अरु संघात से विलक्षण ज्ञानस्वभाववाले चैतन्य आत्मा करकेही जानते हैं ऐसा मानना अरु कहना योग्यहै 'जैसे जिस दाहकस्वभाववाले अग्नि करके

लोहवस्तुओंको दहन करताहै सो अग्नि लोहसे मिलाभया भी भिन्नही है 'तैसेही जिस ज्ञानस्वभाववाले करके लोक शब्दादि विषयों को जानते हैं सोई आत्मा है । अरु इस लोकोंविषे आत्मा करके न जानने योग्य ।' किमत्र परिशिष्यते ? [क्या अवशेष रहता है] अर्थात् कुछभी रहता नहीं किन्तु अव्याकृत से तृणपर्यन्त सर्व आत्मा करकेही जानाजाता है ताते आत्मा सर्वज्ञ है ।' एतद्वैतत् ।' [यहही वह (ब्रह्म) है] अर्थात् जो नचिकेताने तृतीय वरदानकरके पूछाथा अरु देवता भी जिस बिषे संशययुक्त ही हैं अरु जो धर्मादिक अरु तिनके फलादिकन से पृथक् विष्णु का परमपद है ।' नातः परमस्ति '। जिससे पर विष्णुपद नहीं सो यह आत्माख्यही ब्रह्म ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों ने जाना है ३ ॥

स्वप्नान्तं जागरितान्तञ्चोभौ येनानुपश्यति ॥
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ४ ॥

हे सौम्य ! उक्त आत्मा शरीरादि बुद्धिपर्यन्त स्थूल सूक्ष्म सर्वसंघातमें स्थित अरु संघात से विलक्षण महासूक्ष्म होनेसे उसका जानना दुःसाध्य जानके वैवस्वतभगवान् नचिकेता प्रति वारंवार इसही अर्थको कहते हैं । हे नचिकेतः ! वह आत्मा पुनः कैसाहै ।' स्वप्नान्तं जागरितान्तञ्चोभौ ' । [स्वप्नके मध्य पुनः जाग्रत् के मध्य दोनोंको] अर्थात् स्वप्न अरु जाग्रत् इन दोनों के मध्य में जानने योग्य वस्तु जो जाग्रत् स्वप्नका जगत् तिसको लोक '। येनानुपश्यति ' [जिससे स्पष्ट देखता है] अर्थात् जाग्रत् स्वप्न के जगत् को लोक जिस ज्ञानस्वभाववाले आत्मा करके देखते हैं यहही सो ब्रह्म है तिस ।' महान्तं विभु-मात्मानं ।' [महान् (अरु) विभु आत्माको] अर्थात् सर्व से बड़ा अरु सर्वव्यापी अपने आप आत्माको साक्षात् सोऽहमस्मि भावसे '। मत्वा धीरो न शोचति '। [जानके धीर पुरुष शोचते

नहीं] अर्थात् ब्रह्म से अभिन्न आत्माको जानके सूक्ष्मदर्शी बुद्धिमान् पुरुष जन्ममरणादि निमित्तक शोचको पावते नहीं ४॥

य इमं म ध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ॥ ईशानम्भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वैतत् ५ ॥

हे नचिकेतः ! " य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ईशानम्भूतभव्यस्य " [जो कोई इस कर्मफलके भोक्ता (अरु) समीपवर्ती कालत्रयके नियामक जीवरूप आत्माको जानता है] अर्थात् जो कोई बुद्धिमान् विवेकी पुरुष इस यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्मके फलभोक्ता अरु बुद्धि आदि सर्वके समीपवर्ती अरु भूत भविष्यत् वर्तमान तीनोंकालके नियामक ज्ञाता प्राणादि कलासमूहके धारण करनेवाले जीवरूप आत्माको बुद्ध्यादि सर्व से भिन्न सम्यक्प्रकार जानता है " न ततो विजुगुप्सते " [ताते रक्षा करनेको इच्छता नहीं] अर्थात् सम्यक् आत्मज्ञान भये पश्चात् अपने आपकी रक्षा करने को इच्छा करता नहीं क्योंकि अभयपद को प्राप्तभया है जबतक भय [अज्ञान] के मध्य स्थितभया आपको जन्ममरणवान् अनित्य मानता है तहांलगि अपनी रक्षा होनेको इच्छा करता है अरु जब आपको यथार्थज्ञान करके नित्य अविनाशी अद्वैतरूप जानता है तब कौन से किसकरके किसकी रक्षा की इच्छा करे किन्तु किसीकी भी नहीं ताते ' एतद्वैतत् ' यही सो ब्रह्म है ५ ॥

यः पूर्व्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत ॥ गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत । एतद्वैतत् ६ ॥

हे सौम्य ! तृतीय मन्त्रसे पंचम मन्त्रपर्यन्त तीन मन्त्रकरके उत्तम अधिकारी के अर्थ प्रत्यगात्मोपासना द्वारा परमपदकी प्राप्ति देखाया । अब आगे मध्यम अधिकारीके अर्थ हिरण्यगर्भादिकों की अहं अग्रे उपासनाद्वारा भी सत्पदप्राप्ति देखावे,

हैं तहां जो प्रत्यगात्मा ईश्वरभावसे निर्देश किया तिसही को सर्वात्मा करके वेदभगवान् प्रतिपादन करे हैं । हे नचिकेतः ! "यः पूर्वन्तपसो जातमद्भ्यः" [जो जलसे पूर्व तपसे उत्पन्न भया] अर्थात् जो कोई एक मुमुक्षु पुरुष जल उपलक्षण करके जलादि पंचभूतोंसे पूर्वभया जो हिरण्यगर्भ सो ज्ञानादि लक्षणवाले ब्रह्मरूप तपसे उत्पन्न भया है तिससे "पूर्वमजायत" [प्रथम उत्पन्न भया] हिरण्यगर्भ सो देवतादि सर्व शरीरोंको उत्पन्न कर "गुहां प्रविश्यतिष्ठन्तं योभूतेभिर्व्यपश्यत" [गुहाविषे प्रवेशकर भूतन करके सहित स्थित भया जो देखता है] अर्थात् पंचभूतों से पूर्व ब्रह्मसे उत्पन्न भया जो हिरण्यगर्भ तिसको सर्वप्राणियों की हृदयाकाशरूप गुहाविषे प्रवेश करके शब्दादि विषयों को अनुभव करता कार्य कारणरूप भूतों करके सहित स्थित भया है तिसको जो देखताहै सो इस हिरण्यगर्भ की उपासनाप्रसंग विषे ।" एतद्वैतत् ।" [उसी ब्रह्मको देखता है] अर्थात् (जैसे सुवर्णसे उपजे कटक कुंडलादि सुवर्णही होते हैं इतर नहीं) तैसे ब्रह्मसे उत्पन्नभया हिरण्यगर्भ ब्रह्मही है । अरु उस समष्टि हिरण्यगर्भसे नानाव्यष्टि लिंग भये हैं सो समष्टि हिरण्यगर्भसे भिन्न नहीं । इसप्रकार व्यष्टिलिंगोंकी समष्टि हिरण्यगर्भ से अभिन्नता अरु समष्टि हिरण्यगर्भकी ब्रह्मसे अभिन्नता अरु ब्रह्मकी आत्मा से अभेदता तिसको जो देखता है सो हिरण्यगर्भादि व्यष्टि समष्टि सर्वको अपना आप प्रत्यक् देखता है इसप्रकार हिरण्यगर्भ की अहं अग्रे उपासना करता है सो मध्यम अधिकारी भी उक्त उपासना द्वारा परमानन्द को प्राप्त होता है । हे सौम्य ! अब प्राणरूप हिरण्यगर्भ की उपासना के द्वारा सत्पदकी प्राप्ति देखावे हैं ६ ॥

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी ॥ गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत । एतद्वैतत् ७ ॥

हे नचिकेतः ! "। या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी ।" [जो सर्व देवतारूप प्राण करके उपजी है (सो) अदिति है] अर्थात् जो सर्वदेवतामयी प्राणरूप करके प्रथम कला परब्रह्म से उपजी है सो अदिति है अरु "। गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत "। [जो भूतन करके सहित उपजी गुहा बिषे प्रवेश करके स्थितभई है] अर्थात् जो प्राणकला भूतन करके सहित परब्रह्मते उत्पन्न भई है "एतस्माज्जायते प्राणो" तिसको शब्दादि विषयन की भोक्ता होनेसे अदिति नाम से कहते हैं सो सर्व प्राणियों के हृदयाकाशरूपी गुहा बिषे प्रवेश करके स्थितभई है तिस अदिति विशेषणवान् प्राणकला को देखता है सोई प्राण उपासना के प्रसंग बिषे "। एतद्वैतत् "। [इस ही प्रत्यगात्मा ब्रह्मको देखता है] अर्थात् जो परब्रह्मसे उत्पन्न भया सर्व का भोक्ता प्राणसमष्टि सूत्रात्मा सोई सर्वव्यष्टि प्राण भयाहै अरु जिस बिषे परोये भये सूर्य चन्द्रादि सर्व उदय अस्त होते हैं अरु जिसके आश्रय चक्षुरादि इन्द्रियां अपने अपने व्यापार में स्थित हैं सो प्राणसूत्र एकही हैं। अर्थात् जो सर्व प्राणियों के हृदयाकाश बिषे सर्व का भोक्ता व्यष्टि प्राण है सो समष्टि सूत्रात्मासे भिन्न नहीं अरु समष्टि सूत्रात्मा अपने कारण परमात्मा से भिन्न नहीं अरु परमात्मा प्रत्यगात्मा से भिन्न नहीं इसप्रकार व्यष्टि समष्टि प्राण सूत्र परमात्मा को अपने प्रत्यक् से अभिन्न जानके जो प्राण की अहमग्रे उपासना करता है अर्थात् जानता है कि प्राणसूत्र भी हमारा प्रत्यगात्माही है इसप्रकार प्राण की उपासना करता है सो भी अपने प्रकृत आत्मा कोही प्राप्त होता है ७॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः॥ दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः। एतद्वैतत् ८॥

हे नचिकेतः ! " अरण्योर्निहितो जातवेदाः " [अरणी (काष्ठ) विषे स्थित अग्नि] अर्थात् मन्थन करनेके निमित्तसे उत्तरारणि अरु अधरारणि उभयकाष्ठ में स्थित सो अधियज्ञरूपा अग्नि यज्ञकुंडविषे स्थापित किया सर्व हवन किये द्रव्यों का भोक्ता हुआ अथवा सर्वप्राणिन के जठरविषे सर्व अन्न रस जाति का भोक्ता वैश्वानर नाम अग्नि तिसको " गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः " [गर्भवती स्त्रियां जैसे गर्भ को धारण करे हैं] अर्थात् अधियज्ञ अरु अध्यात्म उभयरूपवाले अग्नि को " जैसे गर्भिणी स्त्री शुद्ध अविकारी भोजनादिकन से गर्भ को पोषण करती हुई धारण करे है " तैसेही यज्ञक्रिया के कर्ता होता ऋत्विजादि अरु प्राणायामादिकों के कर्ता योगी पुरुष शुद्ध निर्दोष आहुति भोजनादि द्वारा रक्षा करत संते जिसको धारण करे हैं अरु " दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः " [नित्यनित्य जाग्रत् स्वभाववाले (अरु) हवन स्वभाववाले मनुष्यों करके स्तुति करने योग्य] अर्थात् उक्त अग्नि नित्य नित्य जाग्रत् स्वभाववाले अर्थात् प्राणायाम ध्यान धारणा के करनेवाले अन्तरात्मा वैश्वानर के उपासक अरु घृतादिक हवन द्रव्य से आहुति करनेवाले कर्मी यज्ञाग्नि के उपासक मनुष्यन करके हृदयविषे अरु यज्ञविषे स्तुति अरु वन्दना करने योग्य है । ऐसा जो यह जातवेद नाम्ना अग्निदेव है " एतद्वैतत् " [सोई यह ब्रह्म है] अर्थात् जो अग्नि यज्ञकुंडों विषे अरु प्राणियों के जठर विषे स्थित होय अन्तर बाह्य हुतद्रव्यका भोक्ता जगत्का निर्वाहक योगी अरु ऋत्विजों करके सेवनीय है सो वोही ब्रह्म है अरु जो ब्रह्म है सोई आत्मा है ताते अग्नि ब्रह्म मैंही हौं इसप्रकार जो अग्नि की अहमग्रे उपासना करनेवाले मध्यम अधिकारी हैं सो भी परमानन्दको प्राप्त होते हैं ८ ॥

यतश्चोदेति सूर्य्योऽस्तं यत्र च गच्छति ॥ तन्देवाः

सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन । एतद्वैतत् ९ ॥

हे नचिकेतः ! "यतश्चोदेति सूर्य्योऽस्तं यत्र च गच्छति" [जाते सूर्य उदय होता है पुनः अस्तको पावता है पुनः जिस विषे चलता है] अर्थात् जिस प्राणकरके सूर्य उदय अस्त होता है अरु जिस प्राणसूत्र विषे दिन दिन चलता है अरु "तन्देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन" [तिसबिषे सर्वदेवता अर्पित हैं तिसको कोई भी उल्लंघता नहीं] अर्थात् जिस प्राणकरके सूर्यादि भ्रमण करनेवाले उदय अस्त होते भ्रमणको प्राप्त होते हैं तिस प्रमाणविषे स्थितभाववाले अग्न्यादि अधिदैवतरूप अरु वागादि अध्यात्मरूप सर्वदेवता अर्पित हैं अर्थात् प्रवेशको पावे हैं। तथाच "प्राणस्येदं वशे सर्वं" "अरानाभौ समर्पिता एवमस्मिन् प्राणे सर्वंसमार्पितं" "प्राणो ब्रह्मेति" सो प्राणभी ब्रह्महो है। "नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि" तिस सर्व रूप प्राणसंज्ञक ब्रह्मको कोई भी उल्लंघन करनेको समर्थ नहीं अर्थात् प्राणसूत्रसे पृथक् भया कोईभी स्थित होनेको समर्थ नहीं यह प्राणही सर्वका ज्येष्ठ श्रेष्ठ है "प्राणो वै ज्येष्ठः श्रेष्ठः" ताते "एतद्वैतत्" यहही सो ब्रह्म है ९ ॥

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्रतदन्विह ॥ मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति १० ॥

प्र० ॥ हे भगवन् ! पूर्व आपने सर्वात्मरूप ब्रह्म कहा सो बने नहीं क्योंकि उपाधिवाला चैतन्य (जीव) संसारी है अरु उपाधिरहित चैतन्य (ब्रह्म) असंसारी है एतदर्थ संसारी अ-संसारी विरुद्ध धर्मवालोंकी एकता बने नहीं ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! उपाधि का किया जो विरुद्धधर्मपना तिस करके स्वाभाविक स्वरूप की एकताबिषे भेद रंचकमात्र भी नहीं। सोई वैवस्वत भगवान् नचिकेता प्रति कहते हैं। हे नचिकेतः ! जो वस्तु ब्रह्मा से लेके तृणपर्यन्त सर्व पदार्थोंविषे व्याप्तभया तिन तिन उपाधि

के सम्बन्धसे अब्रह्मवत् भासता है सो परब्रह्मसे भिन्न संसारी है ऐसी निश्चयभावना न करनी। हे नचिकेतः ! । "यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह" [जो यहां सोई वहां जो वहां सोई यहां] अर्थात् जो परमात्मा यहां कार्यकारणरूप उपाधिकरकेयुक्तभया अविवेकी पुरुषको कर्ता भोक्ता आदि संसारी धर्मवान् भासता है सोई परमात्मा वहां सर्वकार्यकारणसे पृथक् सैंधवलवणवत् नित्य विज्ञानघनस्वभाववाला सर्वसंसारधर्म से रहित सदा शुद्ध है । अरु जो ब्रह्म वहां सर्वनाम रूपादि कार्यकारणात्मक प्रपंचसे पृथक् स्वस्वरूप किंवा निर्विकल्प समाधि बिषे है सोईब्रह्म यहां नामरूपात्मक कार्यकारणरूप उपाधिविषे स्थित भया तत्तदनुसार भासता है परन्तु अन्य नहीं ताते ।'मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।' [जोइस (अनानाविषे) नानात्वही देखता है सो मरणसे मरण को प्राप्त होताहै] अर्थात् अन्तःकरणादि उपाधिका स्वभावधर्म अरु भेददृष्टि इन कार्य करके जाननेमें आवनेवाली कारण अविद्या तिस अविद्याकरके मोहको प्राप्तभया जो अज्ञानी पुरुष सो इस अनानारूप एक अद्वैत ब्रह्मविषे मैं ब्रह्मसे भिन्न अरु ब्रह्म मुझसे भिन्न ऐसे भिन्नवत् देखता है अरु तिसविषे आग्रह सहित व्यवहार करताहै सो पुरुष मृत्युसे भी मृत्युको पावता है। अर्थात् वारंवार जन्म मरण कोही प्राप्त होताहै उसका आवागमन नहीं छूटता ताते एकरस ज्ञानस्वरूप निरन्तर आकाशवत् परिपूर्ण वस्तु बिषे भिन्नभाव कदापि देखता नहीं किन्तु सो ब्रह्म मैंही हौं ऐसा निश्चयकर सर्वसंसारधर्म से रहित होना योग्य है १० ॥

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ॥ मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ११ ॥

प्र० ॥ हे भगवन् ! जब ब्रह्म एकरस अद्वैत है तब मैं ज्ञाता अरु यह ज्ञेय ऐसा भेदभाव कैसे भासता है ॥ उ० ॥ हे सौम्य !

अज्ञानियों की कल्पना से ऐसा भेदभाव भासता है वास्तव में भेदभाव नहीं सोई वेदभगवान् कहते हैं। हे नचिकेतः! "मनसैवेदमाप्तव्यं" [मनसेही यह प्राप्त करने योग्य है] अर्थात् प्रथम जब शरीर संस्कारपूर्वक आचार्य से शास्त्रसंस्कार होता है तब उस संस्कृत भये मन करकेही अभेद अनुभव से एकरस अद्वैत ब्रह्म प्राप्त करने योग्य है। अरु "अयमात्मा ब्रह्म"। "नातः परमस्ति"। यह आत्माही ब्रह्म है इससे अन्य कोई नहीं। इसप्रकार निश्चयात्मक अनुभव करने से जब भेदभाव की उपजावनेवाली अविद्या अशेष निवृत्त होती है तब "नेह नानास्ति किञ्चन" [इस ब्रह्म विषे किंचिन्मात्र भी नाना नहीं है] अर्थात् गुरु शास्त्र करके संस्कृत भया है अन्तःकरण जिसका तिस संस्कृत पुरुष की जब एकात्म अनुभव से अविद्या अशेषभाव होती है तब इस प्रत्यगात्मा ब्रह्म विषे किंचिन्मात्र भी भेद भासता नहीं अरु "मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति" [जो इस ब्रह्मविषे नानात्व की नाईं देखता है सो मरण से मरण को पावता है] अर्थात् जो अज्ञानी असंस्कृत पुरुष अविद्यारूप तिमिर करके आच्छादित अविवेकात्मक दृष्टि को न त्यागके इस एक अद्वैत ब्रह्म विषे नानाही देखता है सो पुरुष अपनी अविवेकता भेददृष्टि करकेही मरण से मरण को पावता है। ताते हे सौम्य! भेददृष्टि सर्वथा त्याग करने योग्यही है ११॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्यआत्मनि तिष्ठति ॥ ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वैतत् १२॥

हे सौम्य! पुनः भी उसही प्रत्यगात्मा को जोकि ब्रह्मसे अभिन्न है कहते हैं। हे नचिकेतः! शरीरविषे वक्षस्स्थलके समीप एक मांसपिराडी हृदयकमल है सो अंगुष्ठके प्रमाण है तिसके अन्तर आकाशरूप अन्तःकरण है सो भी तिसके सम्बन्ध

से घटाकाशवत् अंगुष्ठ प्रमाणही है तिस अन्तःकरण विषे स्वयं-ज्योति परमात्मा पुरुष भी है सो यद्यपि सर्व जगत् को पूर्ण करनेवाला होनेसे सर्वत्रही पूर्ण है तथापि अंगुष्ठमात्र हृदयरूप उपाधि के सम्बन्ध से उसको भी अंगुष्ठमात्र करकेही कहते हैं। हे नचिकेतः! ऐसा जो "अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्यआत्मनि तिष्ठति" [अंगुष्ठमात्र पुरुष-शरीर के मध्य स्थित है] अर्थात् हृदयाकाश अन्तःकरणके सम्बन्धसे पूर्ण परमात्मा को कहा जो अंगुष्ठमात्र पुरुष सो अंगुष्ठमात्र पुरुष सर्व प्राणीमात्र की हृदयरूप गुहाविषे विराजमान है अरु "ईशानो भूतभव्यस्य" [भूत भविष्यत् का नियामक है] अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान कालत्रय का नियामक ईश्वर है तिस तीनों कालके नियामक ईश्वररूप अपने आप आत्मा को सोहमस्मिभाव से साक्षात् जानता है तब "न ततो विजुगुप्सते" [ताते रक्षा करने को इच्छता नहीं] अर्थात् ब्रह्म आत्मा का सम्यक् अभेद ज्ञानभये पश्चात् अपने आपकी रक्षा करनेको इच्छा करता नहीं क्योंकि अभयपद विषे प्राप्तभया है ताते "एतद्वैतत्" [यहही सो है] अर्थात् यह आत्माही सो ब्रह्म है १२॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ॥ ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः । एतद्वैतत् १३ ॥

हे नचिकेतः! "अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः" [अंगुष्ठमात्र पुरुष धूमरहित प्रकाशवत्] अर्थात् जो चैतन्य पुरुष अन्तःकरणके सम्बन्धसे अंगुष्ठमात्र तुमको कहाहै तिसको धूम रहित प्रकाशवत् अर्थात् अग्निकरके तप्त सुवर्णपिंडवत् योगीजनोंने अपने हृदयविषे जान्यो है अरु सो "ईशानो भूतभव्यस्य" [भूत भविष्यत्का नियामक है] अर्थात् जो हृदय विषे अंगुष्ठमात्र पुरुष कहाहै सोई भूत भविष्यत् वर्तमान कालत्रयका नियामक ईश्वर है "स एवाद्य स उ श्वः" [सोई वर्त-

मान है सोई कलभी वर्तेगा] अर्थात् सोई ईश्वर प्रत्यगात्मा पुरुष नित्य निर्विकार अब प्राणधारियों बिषे वर्तमान है अरु कलभी सोई वर्तेगा। अर्थात् उसके समान अन्य पुरुष उपजने का नहीं ताते "एतद्वैतत्" [यहही सो ब्रह्म है] १३ ॥ " अयमात्मा " ॥

यथोदकन्दुर्गे वृष्टम्पर्वतेषु विधावति ॥ एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति १४ ॥

हे सौम्य ! पूर्व कही प्रथमवल्लीकी बीसवीं ऋचा बिषे नाचिकेताने कहा कि कईएक वादी कहतेहैं कि मृतकभये शरीरमें आत्मा है कोई कहते हैं नहीं है इस युक्तिसे प्राप्तभया वादियों का पक्ष तिसको वैवस्वत भगवान् ने श्रुतिवचन से निषेध किया। तैसे आत्माको क्षणभंगुरत्व पक्षभी निषेध किया। अब फेरभी मुमुक्षु को अभेदज्ञानकी दृढ़ता के अर्थ भेदज्ञान के निषेधको स्वयं श्रुति प्रतिपादन करेहै। हे नचिकेतः ! "यथोदकन्दुर्गे वृष्टम्पर्वतेषु विधावति" [जैसे जल कठिन पर्वतबिषे वर्षाहुआ नाश होताहै] अर्थात् जल जोहै सो पर्वतके समान अतिकठिन देशबिषे वर्षाद्वारा पतनभया विस्तारको पाय नाना नदी स्रोत झरनाआदि रूपसे प्रवाहित हो विनाश होता है अरु तिस एकही वर्षाके जलको न जानने से नदी स्रोत आदिकों का जल पृथक् पृथक् नाम रूपवाला मानते हैं। " एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति " [ऐसे धर्मों को पृथक् देखता हुआ तिनहीं (भेदोंको) पुनः पुनः पावताहै] अर्थात् उक्त एक वर्षा के जल बिषे नानाभेद देखता है। इसही प्रकार एक अद्वैत आत्मा के धर्मोंको प्रतिशरीर में भिन्न भिन्न देखता हुआ पुरुष उनके पीछे पीछे वर्तमान शरीरके भेदोंको वारंवार पावता है। अर्थात् एक अद्वैत सर्वान्तर आत्माबिषे नानाभेद देखता है सो पीछे पीछे व्यतीत भये नानाजन्मों के नानाशरीर

तिनहीं को वारंवार पावता है उसका संसरण नहीं छूटता १४ ॥

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तन्तादृगेव भवति ॥ एवम्मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम १५ ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमावल्ली समाप्ता ॥ १ ॥

प्र० ॥ हे भगवन् ! जिस उपाधिकृत भेद हैं तिस उपाधिरूप भेददृष्टि से रहित अरु शुद्ध एकरस विज्ञानघन आत्मा के जाननेवाले अरु जानके मनन निदिध्यासन के करनेवाले ऐसे विद्वान् का आत्मस्वरूप होना कैसे संभवे है ॥ उ० ॥ 'गौतम' [हे नचिकेतः !] "यथोदकंशुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति" [जैसे जल शुद्ध विषे पतनभया शुद्ध तैसाही होताहै] अर्थात् जैसे शुद्ध अरु सम धरातल विषे वर्षाद्वारा पतन हुआ शुद्ध एकरस जैसा मेघों से पतन होता है तैसाही होताहै गदलापनादि अन्यथा भावको पावता नहीं "एवम्मुनेर्विजानत आत्मा भवति" [ऐसे जाननेवाले मुनिका आत्मा होताहै] अर्थात् शुद्धदेशके शुद्ध जलवत्ही सर्व उपाधि रहित एकरस विज्ञान घन आत्माके जाननेवाले मननशील मुनिका आत्मा जैसा शुद्ध निर्दोष वास्तवमें है तैसाही सर्व उपाधि अरु तिनके धर्म से रहित निर्दोष सदा शुद्धही होताहै " शुद्धमपापविद्धम् " ताते कुतार्किक भेदवादी पुरुषों की भेददृष्टिको अरु नास्तिक पुरुषोंकी दृष्टिको त्यागके सहस्रावधि माता पिता से भी अधिक हित करनेवाले वेदभगवान् ने उपदेश किया जो ब्रह्म आत्माके अभेद एकताका ज्ञान सो तुम्हसरीखे अहंकारादि आसुरी सम्पदा से रहित पुरुषन करके आदर करने योग्य है १५ ॥

इति कठवल्ल्युपनिषद्द्वितीयाऽध्यायेप्रथमा
वल्ली भाषाटीका समाप्ता १ ॥

ॐनमो भगवते वैवस्वताय ॥ अथ दूसरे अध्याय की दूसरी वल्ली प्रारम्भ करते हैं ॥ गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य ! पूर्व प्रतिपादन किया जो आत्मा ब्रह्म तिसका यथार्थ जानना दुःसाध्य जानके आत्मतत्त्वके निर्धारणार्थ वैवस्वत भगवान् नचिकेताके प्रति पश्चमवल्लीका प्रारम्भ करते हैं तिसविषे यह शरीररूपी पुर कहैंगे अरु तिसका स्वामी राजास्थानापन्न अज आत्माको कहैंगे ॥ हे सौम्य ! यह जो हस्तपादादि युक्त शरीरहै सो पुर (नगर) वत् है अरु (जैसे प्रसिद्ध पुर द्वार अरु द्वारपालादि सर्व सामग्री करके सम्पन्न होताहै) तैसे इस शरीररूपी पुरविषे एकादश द्वार हैं तिसविषे इन्द्रियाधिष्ठाता देवता द्वारपाल हैं अरु मस्तक कण्ठ हृदय यह तीन इसविषे राजास्थानीय महाराज आत्माके सभा करने के स्थान हैं तहां मस्तकरूपी स्थानविषे नेत्ररूपी सिंहासनपर बैठ जाग्रत्‌रूपी मुख्यसभा (आमदरबार) को करताहै अरु कण्ठरूपी स्थानविषे हितानाम्नी नाड़ीरूपी सिंहासनपर बैठके स्वप्नरूपी निजसभा (खासदरबार) को करताहै अरु हृदयरूपी बँगले विषे सर्व सभा सामग्री से पृथक् होय अपनी आनन्दाकार वृत्तिरूपी रानीको साथ ले शयन करताहै। अरु अन्तःकरण चतुष्टयरूपी इसके श्रेष्ठ मन्त्रीहैं तिन मन्त्रियों के आगे इन्द्रियांरूपी श्रेष्ठ कार्याध्यक्ष सर्व पदार्थोंके लेआवने लेजानेवाले हैं। अरु नाना प्रकारकी वृत्तियां अरु युक्तियां उस महाराजाकी सेना है। अरु चिदाभास तिन का सेनापति है अरु अन्तर्यामी उसका पुरपालक है। हे सौम्य ! इत्यादि सामग्री सहित जो शरीररूपी पुर है सो अपने से अमिलित (पृथक्) धर्मवान् आत्मारूपी महाराजाधिराज का होनेको योग्य है ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तम् ॥

ॐपुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ॥ अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्वैतत् १ ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः ! "पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः" [पुर एकादशद्वारवाला अवक्र चैतन्य अज (आत्मा का) है] अर्थात् इस शरीर नामा पुरविषे दो कर्णों के छिद्र दो नासिकाके छिद्र दो नेत्र एक मुख यह सात ऊपरके द्वार हैं अरु नाभि लिंग गुदा यह तीन नीचेके द्वार हैं अरु एक मस्तक का ब्रह्मरंध्ररूपी द्वार है। इसप्रकार एकादश द्वार हैं ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! यह पुर किस राजाका है ॥ उ०॥ हे नचिकेतः! पुरके वृद्धिक्षयादि धर्मसे विलक्षण वक्रतारहित (जैसे सूर्यका प्रकाश सर्वओर से सर्वको नित्य सीधाही है) तैसेही नित्यही स्थित एकरस ज्ञानस्वरूपवाले जन्मादि विकाररहित अज परमात्मा से अभिन्न आत्मरूप राजाका यह उक्त पुर है हे सौम्य ! जिस राजाका यह पुरहै तिसके समानही सर्वशरीररूपी पुरमें स्थित पुरके स्वामी एक अद्वैत सर्वगत परमात्माको "अनुष्ठाय न शोचति" [अनुष्ठानकरके शोचता नहीं] अर्थात् पुरके स्वामी सर्वान्तर प्रत्यगात्माको सम्यक् ज्ञानपूर्वक ध्यान मनन निदिध्यासन करके लोकादि सर्वइषणासे रहित हुआ पुरुष शोकको पावता नहीं। "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यत" "तरति शोकमात्मवित्" । अरु जो पुरुष सर्वान्तर एक प्रत्यगात्मा के मनन निदिध्यासादि रूप अनुष्ठानकरके शोकसों रहित होता है सो यहां जीवन्मुक्तदशा विषेही अविद्या अरु तिसके किये काम कर्मादिकों से "विमुक्तश्च विमुच्यते" [मुक्तभया भी मुक्तिको पावता है] अर्थात् जो सम्यक् ज्ञानपूर्वक आत्माध्यासी पुरुष है सो अविद्या अरु तिसके कार्यसे नित्यमुक्त भयाभी मुक्तहोताहै अर्थात् वारंवारके जन्म मरणसे रहित होता है अरु एतदर्थही शोकको प्राप्त होता नहीं ताते "एतद्वैतत्" [यहही सो ब्रह्म है] अर्थात् उक्त पुरके स्वामी आत्मा से इतर ब्रह्म नहीं १ ॥

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोतावेदिषदतिथिर्दुरो-

णसत् ॥ नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् २ ॥

हे नचिकेतः ! जो आत्मा पुरका स्वामी करके कहाहै सो एक शरीररूपी पुरका स्वामी नहीं किन्तु सर्व पुरबिषे पुरका स्वामीहै सो कैसाहै "। हथ्सः ।" [हंसहै] अर्थात् विशेषरूप से गमन करेहै ताते उसको हंस कहते हैं अरु "। शुचिषत् "। [पवित्र गतिकर्ताहै] अर्थात् आकाशरूप पवित्र देशबिषे सूर्यरूप हुआ गमन करता है एतदर्थ उसको ' शुचिषत् ' कहते हैं अरु "। वसुः "। [वसावे है] अर्थात् सर्वको अपनेबिषे निवास करावताहै एतदर्थ इसको ' वसुः ' कहते हैं अरु । "अन्तरिक्षसत्"। [अन्तरिक्षमें गतिकर्ता है] अर्थात् वायुरूपसे अन्तरिक्षबिषे गमन करताहै ताते उसको ' अन्तरिक्षसत् ' कहते हैं अरु । 'होता।' [अग्नि] अर्थात् अग्निरूपहै—ताते इसको होता नाम से कहते हैं ' अग्निर्वै होतेति श्रुतेः ' अरु "। वेदिषत् "। [पृथिवी बिषे स्थित है] अर्थात् वेदि जो पृथिवी तिसबिषे अग्निरूप से स्थितहै ताते इसको ' वेदिषत् ' कहतेहैं " इयंवेदिःपरोऽन्तः पृथिव्याः " इत्यादि मन्त्रवर्णात् । अरु "। अतिथिर्दुरोणसत् " [जलरूप स्थित है] अर्थात् अतिथि काहिये जल सो जलरूप भया कलश बिषे स्थित होताहै ताते अथवा अतिथिरूपसे गृहों बिषे गमन करताहै ताते उसको ' अतिथिर्दुरोणसत् ' कहते हैं। अरु "। नृषत् "। [मनुष्यों बिषे स्थित होता है] ताते उस को ' नृषत् ' कहते हैं। अरु "। वरसत् "। [श्रेष्ठ स्थितहै] अर्थात् श्रेष्ठ जो देवता तिनबिषे स्थित होता है ताते इसको ' वरसत् ' कहतेहैं। अरु "। ऋतसत् "। [ऋत स्थित है] अर्थात् ऋत जो सत्य किंवा यज्ञ तिसबिषे स्थित होताहै ताते उसको ' ऋतसत् ' कहते हैं। अरु "। व्योमसत्।" [आकाशबिषे स्थित है] ताते इसको ' व्योमसत् ' कहते हैं। अरु "। अब्जा ।" [जलसे

उत्पन्न] अर्थात् जलविषे शंख शुक्ति मकर मीनादि रूप से उत्पन्न होताहै ताते उसको ' अब्जा ' कहते हैं अरु "। गोजा।" [पृथिवी से उत्पन्न] अर्थात् पृथिवी विषे तंदुल यव माष ' उड़द ', मसूरादि रूपसे उत्पन्न होता है ताते उसको ' गोजा ' कहते हैं। अरु "। ऋतजा ।" [ऋतसे उत्पन्न] अर्थात् ऋत तो यज्ञ तिसके साधनरूपसे उपजाहै ताते उसको ' ऋतजा ' कहते हैं। अरु "। अद्रिजा ।" [पर्वतसे उत्पन्न] अर्थात् पर्वतसे नद्यादिरूप करके उत्पन्न होताहै ताते उसको ' अद्रिजा ' कहते हैं। अरु "। ऋतं ।" [सत्यहै] अर्थात् सर्व उपाधि के साथ मिलके सर्वात्मा हुआ भी सत्य स्वभाववाला है ताते उसको ' ऋतं ' कहतेहैं। अरु "। बृहत् ।" [बड़ाहै] यद्यपि इस मंत्रकरके सूर्यकोही वर्णन किया है तथापि सूर्यको आत्मस्वरूपवान् ताको अंगीकार करने से इस मन्त्रका अर्थ ब्रह्मपरत्व होने में कुछ विरोध नहीं २ ॥

ऊर्द्ध्वम्प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ॥ मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते ३ ॥

हे सौम्य ! अब देहसे भिन्न आत्माके स्वरूपको जानने के विषे चिह्न कहते हैं "। ऊर्द्ध्वम्प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।" [प्राण ऊपर चलता है अपान नीचे चलता है] अर्थात् प्राण वृत्तिरूप वायुको हृदयस्थानसे ऊपर चलावताहै तैसेही अपान वायुको नीचे चलावताहै। तिस हृदयान्तर्गत आकाशके "। मध्येवामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते।" [मध्यविषे स्थित वामन को सर्व देवता उपासते हैं] अर्थात् हृदयान्तर्वर्ती आकाश के मध्य अंगुष्ठमात्र चैतन्य पुरुष स्थितहुआ स्वसत्ता करके आप प्राणको ऊर्ध्व अरु अपानको अधः चलावताहै, जैसे बालक चकई में डोराबांधके अपने हाथके इशारे से उस डोरेके आश्रय फेंकता अरु खींचता है तैसे। तिस हृदयान्तरस्थित अंगुष्ठमात्र

वामनको अर्थात् सर्व प्रकार उपास्यको सर्वचक्षुरादि इन्द्रियरूप देवता (जैसे राजाको वैश्यादि) तद्वत् रूपादि विषयरूप बलिदान (कर) देतेसंते उपासते (सेवते) हैं। अर्थात् रूपादि विषयके ज्ञान को उस अंगुष्ठमात्र वामन नामक आत्मारूपी राजाके अर्थ होनेसे तिसके इन्द्रियरूप सेवक अपने अपने व्यापार रहित होते नहीं सर्वदा उस महाराजकी सेवा विषेही रहते हैं। अभिप्राय यह है कि जिसके अर्थ प्राणादि इन्द्रियोंके व्यापार हैं अरु जिसकी सत्तारूप प्रेरणा से होते हैं सो आत्मा देहादि सर्व से पृथक्ही है ३ ॥

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः॥ देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते। एतद्वैतत् ४ ॥

हे नचिकेतः! "अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः" [इस शरीरविषे स्थित देहवालेको] अर्थात् इस संघातविषे स्थित जो देही तिस देहवालेको "देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते" [देहसे मुक्त (भ्रष्ट) भये इस विषे क्या शेष रहता है] अर्थात् देहवाले आत्माको देहसे मुक्तभये पश्चात् अशुचि भये इस देह विषे प्राणादिकों का संघात क्या अवशेष रहता है अर्थात् कुछभी शेष रहता नहीं "एतद्वैतत्" [यहही सो ब्रह्म है] अर्थात् हे सौम्य! जैसे पुरके स्वामी के निकसने से पुरवासी प्रजा निर्बल होयके नाशको पावे है तैसेही देहसे आत्मा के निकलतेही यह सर्व कार्यकारणात्मक समूह निर्बल हुआ नाशको पावता है सो आत्मा देहसे पृथक् ही सिद्ध है ॥ अरु पूर्णआत्मा का जो देहसे निकसना कहाहै सो घटके सम्बन्ध से आकाश के गमनवत् लिंगरूपी उपाधि सम्बन्ध से है वास्तव में नहीं ४ ॥

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन॥ इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ५ ॥

प्र० ॥ हे भगवन् ! कोई एक आचार्य इस प्राणके निकस जाने सेही इन इन्द्रियादि समूहका नाश होना मानते हैं प्राण से भिन्न आत्मा के निकसने से नहीं ताते प्राणही करके मनुष्यादि जीवते हैं ऐसा मानते हैं ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! जो ऐसा कहते हैं उनका कहना समीचीन नहीं सोई मृत्युभगवान् नचिकेता प्रति कहतेहैं । हे नचिकेतः !"न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन"। [कोई भी मनुष्य प्राण (अरु) अपान करके जीवता नहीं] अर्थात् कोई भी देहवान् प्राण अपान अथवा चक्षुरादि इन्द्रियों करके जीवता नहीं क्योंकि यह सर्व दूसरे के अर्थ होनेवाले प्राण अरु प्राणसे मिलिके कार्यको करनेवाली इन्द्रियां तिनको जीवनका हेतुत्व बने नहीं ॥ प्र०॥ हे भगवन् ! [जीवधातु] प्राणधारणरूप अर्थविषे वर्तता है तिसके विचार से पात्र में दधिके धारणवत् शरीरविषे जो प्राणका संयोग है सोई शरीर के जीवनका हेतु प्रसिद्ध है तब आप प्राणादिकों को जीवनका हेतुत्व संभवे नहीं ऐसा क्यों कहते हो ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! कदाचित् होनेवाले प्राण अरु शरीर तिनके संयोग का स्वभावसे असंभवहै ८ जैसे लोकविषे गृहादिकोंकी स्थिति गृहकी सर्वसामग्री से पृथक्स्वभाववाले गृहस्वामी करके है ? तैसे प्राणादिकनकोभी संघातरूप होने करके तिनकीभी स्थिति अन्यउक्त लक्षणवाले चैतन्य की करीहुई होनेके योग्य है क्योंकि इस सर्व संघातको स्वेच्छासे एकत्रकरनेवाला संघात से पृथक्ही है॥ताते पराधीन स्थितिवाले प्राणादिकन को जीवन का हेतुत्वपना योग्य नहीं किन्तु संघात से मिलेभये प्राण से विलक्षण "। इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ।" [अन्य सेही जीवते हैं तिसके होते स्थितिको पावते हैं] अर्थात् संघात के धर्मसे विलक्षण संघातके स्वामी आत्मा करकेही संघातरूप हुये मनुष्य जीवते हैं अर्थात् प्राणको धारते हैं अरु संघात से विलक्षण परब्रह्मरूप आत्माके होते स्थितिको पावते हैं । तात्पर्य

यह है कि जिस संघात से पृथक् आत्माके अर्थ प्राण अपान इन्द्रिय आदि सर्व एकत्र भये अपने अपने व्यापार को करते हैं सो चैतन्य आत्मा संघात से पृथक्‌ही है ५ ॥

हन्त त इदम्प्रवक्ष्यामि गुह्यम्ब्रह्म सनातनम् ॥ यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ६ ॥

हे नचिकेतः ! तुझको ब्रह्मविद्या का उत्तमाधिकारी जानके मैं प्रसन्न भया हौं एतदर्थ "हन्त त इदम्प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्" [मैं तुझसे इस पुरातन गोप्य ब्रह्मको कहताहौं] अर्थात् हे नचिकेतः ! तुझपर प्रसन्न भया मैं अब फेरभी तेरे प्रति इस पुरातन गोप्य ब्रह्मको जिसको कि दूसरी वल्लीकी बारहवीं श्रुतिमें 'गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणं' करके कहाहै तिसको कहता हौं क्योंकि जिसके ज्ञान होने से सर्वसंसार की निवृत्ति होती है अरु जिसके न जानने से "यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम" [हे गौतम ! (नचिकेतः !) जैसे मरणको प्राप्त होयके आत्मा होता है सो श्रवण करो] अर्थात् हे गौतमगोत्रोत्पन्न ! हे प्रियदर्शन नचिकेतः ! अज्ञानी पुरुषका आत्मा मरण को प्राप्त होय जैसा होता है अरु जैसे संसार को पावता है सो मैं कहताहौं तिसको सावधानता से श्रवण करो ६ ॥

योनिमन्ये प्रपद्यन्त शरीरत्वाय देहिनः ॥ स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ७ ॥

हे नचिकेतः ! "योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः" [अन्य देहाभिमानी शरीरग्रहणार्थ योनिको पावते हैं] अर्थात् ज्ञानवान् से अन्य देहाभिमानी जो शरीर के वर्णाश्रमादि अभिमानपूर्वक कर्मके कर्ता अविद्वान् अज्ञानी पुरुष हैं सो अपने कर्मवशात् जंगम शरीरके ग्रहणार्थ शुक्र-शोणितयुक्त माता के गर्भस्थानरूपी योनिद्वार में प्रवेशको पावते हैं। अरु "स्थाणुमन्येनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम" [अन्य स्थावरभाव को

पावते हैं जैसा कर्म (अरु) जैसा सुना है] अर्थात् देहाभिमानपूर्वक कर्मके करनेवालेसे भी अन्य जे अत्यन्तमूढ़ धर्म कर्मसे भ्रष्ट अधम पुरुष हैं सो मरणको पाय के वृक्ष पाषाणादि स्थावरभावको पावते हैं । अर्थात् जिन धर्मरहित पुरुषों ने इस जन्मविषे जैसा कर्म किया है तिसके अनुसार तैसेही स्थावरभाव शरीरको पावते हैं तथा । जिस पुरुष ने प्रवृत्तिशास्त्रद्वारा जैसा श्रवणकर निश्चय किया है तिसके अनुसारही शरीर को धारते हैं । तथाच " यथा प्रज्ञं हि संभवा " ७ ॥

य एष सुप्तेषु जागर्त्ति कामंकामं पुरुषो निर्म्मिमाणः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥ तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदुनात्येति कश्चन । एतद्वैतत् ८ ॥

हे सौम्य ! पूर्व जो इस वल्ली के छठे मंत्र करके कहा कि 'हन्त त इदम्प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्' गोप्य सनातन ब्रह्महै सो मैं तुझको कहताहौं । सो अब कहतेहैं । हे नचिकेतः ! " य एष सुप्तेषु जागर्त्ति कामंकामं पुरुषो निर्म्मिमाणः " [जो यह पुरुष सोयेहुये तिस तिस वाञ्छित विषयको रचताहुआ जागता है] अर्थात् जो यह पुरुष स्वप्नविषे प्राणइन्द्रिय आदिकन के सोयेहुये अपने को वाञ्छित स्त्री, पुत्र, पशु, सूर्य, चन्द्र, देवी, देवतादि सर्व ब्रह्माण्डको अविद्यासे रचताहुआ जागता है अर्थात् रचेहुये जगत्को प्रकाश करतसन्ते अनुभव करता है " तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते " [सोई सो शुद्ध ब्रह्म है (अरु) सोई अविनाशी कहाजाता है] अर्थात् जो चैतन्यपुरुष स्वप्न विषे इन्द्रियादिकनके सोयेहुये स्ववाञ्छित जगत्को रचके आप अनुभव करताहै सोई सो सनातन गोप्य ब्रह्म है इससे इतर और नहीं सोई ब्रह्म सर्वशास्त्रों विषे अविनाशी कहागया है । " अविनाशित्वात् " । " अविनाशितु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततं " । अर्थात् शरीरादिकों के नाशसे

आत्मरूप ब्रह्मका नाश नहीं होता "। तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदुनात्येति कश्चन "। [तिसही बिषे सर्वलोक आश्रित हैं तिसको कोई भी लंघता नहीं] अर्थात् जो आत्मा स्वप्नजंगत् को रचके अनुभव करता है अरु प्राणादि संघातको अपने आश्रय धारता है तिसही आत्मा ब्रह्मके आश्रय पृथिव्यादि सर्व ब्रह्माण्ड स्थित हैं तिस सर्वाधार ब्रह्मको कोईभी लंघता नहीं। अर्थात् सर्वका कारण अधिष्ठान ब्रह्म तिसको त्याग के कोई भी अन्य होता नहीं एतदर्थ "। एतद्वैतत् "। [यहही सो (ब्रह्म है)] हे सौम्य ! अनेक तर्कयुक्त बुद्धिवाले भेदवादियों के वाक्य श्रवण से चलायमान चित्त अरु आर्जव समाधिरहित बुद्धिवाले जे पुरुष हैं तिनके चित्तबिषे श्रुतिवाक्य से वारंवार उपदेश किया भी आत्माकी अभेदताका ज्ञान स्थिर होता नहीं एतदर्थ सर्व करके मान्य वेदशिरो श्रुति मुमुक्षुओंपर कृपा करती वारंवार दृष्टान्तयुक्त आत्माकी ऐक्यताही उपदेश करे है। तातें हे सौम्य! सर्वभेदवादी तार्किकों का वाक्य संगत्याग साक्षात् वेदश्रुति के वाक्यानुसार ब्रह्म आत्माका अभेद निश्चय करो ८॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव॥
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च ९॥

हे नचिकेतः ! "। अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव "। [जैसे एक अग्नि भुवनबिषे प्रवेशको पाया रूपरूप से प्रतिरूप होताभया] अर्थात् जैसे एकही अग्नि सो सर्वलोकन बिषे प्रवेशकर जलावने योग्य काष्ठादिकों के भेदसे बहुत प्रकारका होता भया अर्थात् टेढ़ा सीधा ऊंचा नीचा जैसे जैसे काष्ठादि उपाधि के साथ अग्नि मिलता है तैसे तैसे रूपको प्राप्त भया प्रतीत होता है परन्तु तहां उपाधिके धर्मको त्याग के अग्निको अनुभव से देखिये तो सर्व उपाधिधर्म से रहित अपने बिषे जैसा है तैसाही है "। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा

रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च "[तैसे सर्व भूतोंका अन्तरात्मा एक होतसंते भी देह देह प्रति प्रतिरूप होता भया अरु बाहर भी है] अर्थात् 'जैसे एकही अग्नि काष्ठादि उपाधिभेद से नानारूप भया हुआ भासता है ' तैसे एकही अन्तरात्मा अति सूक्ष्म होने से आकाशादि तृणपर्यन्त सर्व देहों में प्रवेश को पायाहुआ नानारूप होताभया परन्तु सर्व शरीरादिकनकी उपाधि को त्याग के केवल एक आत्माही को अनुभव कर देखिये तो सर्वविषे एक अद्वैत आत्माही अनुस्यूत भया सर्व उपाधिके धर्मसे रहित भासता है अरु सोई आत्मा आकाशवत् सर्व के बाहर भी है । " आकाशवत् सर्वगतः स नित्यः " । " सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः " ६ ॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव ॥
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च १०

हे नचिकेतः ! उक्तप्रकार अन्य दृष्टान्त से भी श्रवण करो " वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव " [जैसे एक वायु सर्व में प्रवेशको पायके शरीर शरीरप्रति प्रतिरूप होताभया] अर्थात् जैसे एकही वायु प्राणरूपसे सर्व भूतों विषे प्रवेश करके प्रतिदेह भिन्न भिन्न रूपसे प्रतीत होता है " एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च " [तैसे एकही सर्वभूतों का अन्तरात्मा देहदेह प्रति प्रतिरूप होताभया (अरु) बाहरभी है] अर्थात् ' जैसे अग्नि अरु वायु सर्वलोकों विषे प्रवेशको पाये तिन तिन के साथ तिस तिस रूपसे प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तव से नहीं ' तैसे एकही अखण्ड आत्मा सर्वलोकों विषे प्रवेश को पायासता नानारूप भासता है परन्तु वास्तवमें नाना नहीं एकरस चैतन्यरूपही है १० ॥

सूर्य्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषै-

बाह्यदोषैः ॥ एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ११ ॥

हे नचिकेतः ! "सूर्य्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।" [जैसे सूर्य सर्वलोकोंका चक्षुभयाभी चक्षुके (अरु) बाहर के दोषों करके लिप्त होता नहीं] अर्थात् जैसे सूर्य बाह्य के मल मूत्रादि अपवित्र पदार्थों को प्रकाश करने से चक्षुओंपर उपकारकर्ता हुआ उन अपवित्र पदार्थोंका द्रष्टा सर्व लोकोंका चक्षुभया भी अपवित्रादि पदार्थों के दर्शन निमित्तसे अरु चक्षुरूपगोलकों के दुःखादि निमित्तसे भये जो दोष दुःख तिनकरके लिपायमान होता नहीं "एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।" [तैसे एक बाहर (जो) सर्व भूतों का अन्तरात्मा (सो) लोकके दुःख से लेपको पावता नहीं] अर्थात् जैसे सूर्य बाह्य प्रकाशरूप अरु अन्तर चक्षुरूप हुआभी बाह्य के अपवित्र पदार्थों के अरु अन्तर चक्षु के दुःखोंसे मिला भया भी उनके धर्मों से लिपायमान होता नहीं तैसे सर्वभूतों का अन्तरात्मा शरीरादि सर्व उपाधि साथ मिलने से उपाधि-धर्मवान् दुःखी सुखी जन्म मरणयुक्त अविद्या करके भासता है परन्तु सर्व उपाधि अरु तिनके धर्म से पृथक् करके यथार्थ अनुभव करने से ज्ञानवान् को सदा निर्दोष अलिप्तही भासता है ताते आत्मा सर्वउपाधि से अलिप्त सदा शुद्धही है ११ ॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपम्बहुधा यः करोति ॥ तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतन्नेतरेषाम् १२ ॥

हे नचिकेतः ! उक्तप्रकार सर्वउपाधि के धर्म से असंग अ-लिप्त जो परमात्मा सो "। एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ।" [जो एक सर्वको वश करनेवाला सर्वभूतों

का अन्तरात्मा (सो) एक रूपको बहुत प्रकार से करता है] अर्थात् जो सर्वगत स्वतन्त्र परमात्मा एकहै तिसही के वश भया सर्वजगत् वर्तता है ताते उसको वशी कहते हैं क्योंकि सर्व भूतोंका अन्तरात्मा है सो परमात्मा सर्वशक्तिमान् शुद्ध एक-रस ज्ञानरूप अपने आप करके अपनी सर्व शक्तिमत्ताको पृथक् पृथक् अनुभव करने के अर्थ नामरूपादि अशुद्धउपाधिके भेदसे अपने को बहुत प्रकारसे करता है "। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतन्नेतरेषाम् "। [तिस शरीरस्थ (आत्मा को) जो विवेकी अनुभव करता है तिसको नित्य सुख है अन्य को नहीं] अर्थात् तिस सर्वान्तर आत्मा को जो बाह्यवृत्ति से रहितहुये अपने शरीर विषे हृदयाकाशगत बुद्धिमें स्वयंज्योति चैतन्याकार से जो विवेकी पुरुष शास्त्रोपदेश प्रमाणसे साक्षात् सोहमस्मिभाव से अनुभव करते हैं तिन परमात्मरूप हुये पुरुषोंको ब्रह्मानन्दरूप नित्य सुख होता है अरु तिन आत्म-वेत्ताओं से इतर जे बाह्य विषयासक्तबुद्धिवाले अविवेकी पुरुष हैं तिनको आत्मानन्द अपना आप स्वरूप होतसंते भी अ-विद्यादोष से वह आत्मानन्द सुख प्रकट होता नहीं १२ ॥

नित्योऽनित्यानाञ्चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ॥ तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् १३ ॥

हे नचिकेतः ! जो परमात्मा "नित्योऽनित्यानाञ्चेतनश्चे-तनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् " [अनित्यों का नित्य है चेतनाका चेतन है जो एक बहुतों के अर्थ भोगन को देता है] अर्थात् जो परमात्मा समस्त नाम रूप क्रियात्मक अ-नित्य जगत् का अधिष्ठान कारणरूप नित्य है अरु ब्रह्मादि सर्व प्राणीमात्र की जो साभासबुद्धिकी वृत्तिरूप चेतना है तिसका वह चेतन है "जैसे जलादि अदाहकशक्तिवाले पदार्थों विषे

दाहकता प्रतीत होती है सो दाहकस्वभाववाले अग्निरूप निमित्त कीही करीहुई है, तैसे सर्वप्राणिन के बिषे जो चेतनापना है सो चैतन्यरूप निमित्त का कियाही है सो परमात्मा सर्वका ईश्वर सर्वज्ञ है क्योंकि जो आप एक अद्वैतभया बहुत कामनावाले संसारीजीवों को उनके कर्मानुसार कर्मफल भोगोंको देता है "तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।" [तिस बुद्धिविषे स्थितको जो धीरपुरुष अनुभव करते हैं तिनको नित्य शान्ति होती है इतरको नहीं] अर्थात् जो परमात्मा अनित्य पदार्थोंका अधिष्ठान नित्य है अरु जो सर्व चेतनाओंका चेतन है अरु जो एकहुआ सर्वज्ञ सर्वजीवों को कर्मानुसार फलभोग देता है सो चैतन्य परमात्मा कि जो ज्ञानस्वरूप चैतन्याकार से अस्मदादिकोंकी बुद्धिविषे स्थित है तिसको जो धीर (विवेकी) पुरुष साक्षात् अपना आप सोहमस्मिभाव से अनुभव करते हैं तिनहींको नित्य पराशान्ति (मोक्ष) होती है अरु उन धीर विवेकी पुरुषों से अन्य जे विवेकादि शुभगुणरहित अज्ञानी हैं तिनको नहीं १३ ॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यम्परमं सुखम् ॥ कथन्नुतद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा १४ ॥

हे नचिकेतः ! अब आत्माके बिषे अनुभव देखावने के अर्थ कहते हैं "तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यम्परमं सुखम्।" [जो कहने बिषे आवे नहीं उत्कृष्ट सुख है सो यह है ऐसा मानते हैं] अर्थात् जो यह वाणीका विषय न होने से कहने को अशक्य सर्वोत्कृष्ट प्राकृतपुरुषों के मन वाणीका अविषय होने से भी आत्मा ज्ञानस्वरूप सुख है तिसको तीन इषणा से रहित जो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणहैं वे सो यह प्रत्यक्ष है ऐसा मानते हैं। नचिकेता उवाच। हे भगवन् ! "कथन्नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा।" [तिसको मैं कैसे जानों सो कैसे प्रकाशता है सो

स्पष्ट भासता है वा नहीं] अर्थात् हे भगवन् ! जैसे इषणात्रय से रहित ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण आत्मसुखको जानते हैं तिस सुखको सो यह है ऐसे आपकी बुद्धि के विषय को मैं कौन प्रकार से जानों अरु सो ब्रह्मआत्मा कैसे प्रकाशता है अरु जिससे सो आत्माब्रह्म प्रकाशरूप है तिसकरके सो ब्रह्म मेरी बुद्धिकरके देखाजाता है वा नहीं सो कृपाकरके कहिये १४ ॥

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकन्नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥ तमेव भान्तमनुभाति सर्वन्तस्य भासा सर्वमिदं विभाति १५ ॥

इति द्वितीयाऽध्यायेद्वितीयोपनिषत्सुद्वितीयावल्ली समाप्ता २ ॥

मृत्युरुवाच ॥ हे नचिकेतः ! यह ब्रह्म प्रकाशता है अरु स्पष्ट देखा जाता है सो कैसे देखाजाता है यह जो तेरा प्रश्न है तिसका उत्तर श्रवणकर "। न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकन्नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।" [तिस बिषे सूर्य भासता नहीं (तैसे) चन्द्रमासहित तारा (प्रकाशते) नहीं (अरु) यह बिजलियां भी प्रकाशती नहीं (तब) यह अग्नि कैसे प्रकाशेगा] अर्थात् तिस अपने आत्मरूप ब्रह्मविषे सर्वका प्रकाशक सूर्य सोभी तिसको प्रकाशता नहीं तैसेही सहित चन्द्रमाके तारागण भी उसको प्रकाशते नहीं अरु यह जो मेघों के सम्बन्धसे प्रकाशनेवाली बिजलियां सोभी उसको प्रकाशती नहीं तब यह हम करके प्रकट किया जो लौकिक अग्नि सो उसको कैसे प्रकाशेगा किन्तु न प्रकाशेगा । हे नचिकेतः ! बहुत कहनेसे क्याहै किन्तु "। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।" [सर्व तिसही प्रकाशमान के पीछे भासता है (अरु) तिसहीके प्रकाशसे यह सर्व भासता है] अर्थात् जो

यह सूर्यादि सर्व जगत् भासता है सो तिसही स्वयंप्रकाश परमात्माके पीछेही भासता है ८जैसे जलादिक जो हैं सो दाहकर्ता अग्निके पीछे अग्नि के संयोगसे दाह करते हैं आपसे नहीं ७ तैसे तिसही स्वयंज्योति परमात्माके प्रकाशसे सूर्यादि स्वप्रकाशपर प्रकाशरूप यह सर्व जगत् भासता है आपसे नहीं। ताते सोई स्वयंप्रकाश परमात्मा सूर्यादि उपाधिके साथ मिलके सर्वको प्रकाशत सन्ते प्रत्यक्ष भासता हैं। "यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्" ॥ इति भगवद्गीता अध्याय पन्द्रहवें में १५ ॥

इति कठवल्ल्युपनिषद्द्वितीयाऽध्यायगतद्वितीयोपनिषत्सु द्वितीयावल्लीभाषाटीका समाप्ता २ ॥

अथ द्वितीयाध्यायान्तर्गततृतीयावल्लीभाषाटीका प्रारभ्यते ॥ गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य ! ८जैसे अश्वत्थः (पीपल) आदि वृक्षरूप कार्य के देखने से नहीं भी देखा जो उन्होंका मूल सोहै ऐसा निश्चय करते हैं ७ तैसे संसार वृक्षरूप कार्य के देखने से न देखा हुआ भी इसका ब्रह्मरूप मूल तिसके निश्चय करावने के अर्थ भगवान् वैवस्वत द्वारा साक्षात् वेदही कहता है ॥

ॐ ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः । तदेव शुक्रन्तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥ तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्व्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वैतत् १ ॥

हे नचिकेतः ! "ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः" [यह ऊर्ध्वमूल नीची शाखावाला चिरकाल का पिप्पल है] अर्थात् जो यह अज्ञानसे आदिले स्थावर योनिपर्यन्त संसार वृक्ष है सो सर्वोपरि विष्णुपदरूपी ऊंचे मूलवाला है एतदर्थ इसको ऊर्ध्वमूल कहते हैं सो यह संसाररूपी वृक्ष कैसा है कि

जन्म मरण जरा रोग शोक मोहादि अनेक अनर्थरूप क्षण क्षण विषे विपरीत स्वभाववाला है अरु बाजीगरकी माया गन्धर्व नगरादिवत् देखतेही देखते नाशको पावता रहता है एतदर्थ इसको वृक्ष करके कहते हैं । अरु अन्तविषे अभावरूप केलेके स्तंभवत् असार है अरु ‹ जैसे प्रसिद्ध वृक्षविषे ठूँठ वा पुरुष है इत्यादि विकल्प होता है › तैसे यह संसार भी समुदायरूप है वा परिणामरूप है वा आरंभित है वा सत्य है वा असत्य है इत्यादि अनेक प्रकार के पाखंडयुक्त बुद्धिवाले पुरुषों के विकल्प का विषय है अरु तत्त्वके जिज्ञासु पुरुषोंकरके जिसके स्वरूप का निर्णय होता नहीं ऐसा है अरु वेदान्तशास्त्र करके निर्धार किये परमात्मरूप सारभूत मूलवालाहै अरु अविद्या काम कर्मरूप स्पष्ट बीजसे उत्पन्न भया है अरु परमात्मा की प्रथम अवस्था रूप ज्ञानशक्ति अरु क्रियाशक्ति उभयशक्त्यात्मक हिरण्यगर्भ-रूप अंकुरवाला है अरु नाना (अनेक) लिंगशरीररूपी स्कंध (मोटीशाखा) वालाहै अरु तृष्णारूपी जल से सिंचित ज्ञाने-न्द्रियोंके शब्दादि विषयरूप कोपल (कोमलपत्र) वाला है अरु वेद श्रुति स्मृति युक्ति अरु विद्याके उपदेशरूप प्रौढ़पत्रवाला है ताते वेदशास्त्रादिकों का जो पढ़ना है सोई उन पत्तों का खड़-खड़ाहट शब्द है अरु सुखदुःखमय प्राणियों की वेदनारूप रससंयुक्त अरु प्राणियोंकी उपजीविका करने योग्य अनन्त फल वाला है अर्थात् जगत् विषे यावत् उपजीविका है तावत् सर्व संसार वृक्षके फल हैं तिसही करके इस वृक्षाश्रित जीवरूपी पक्षी जीवते हैं अरु तिन फलोंकी तृष्णारूपी जल के सींचनेसे आरूढ़ भये अरु सात्त्विकादि भाव से मिश्रित भये कर्म अरु वासना आदि रूप दृढ़ बन्धन भये वटवृक्षवत् अर्थात् ‹ जैसे वटके वृक्षकी जटा पृथिवी में प्रवेश करके उसको पृथिवी साथ दृढ़ बन्धन करे है › तद्वत् अवान्तर मूलवाला है अरु सत्यादि लोकरूप ब्रह्मादि पक्षियों करके कियेहुये आलय (घोसले)

वाला है अरु प्राणीरूपी पक्षियों के दुःख सुखसे उत्पन्न भये हर्ष शोक तिनसे उपजे जे गावना बजावना नाचना खेलना हँसना रोवना हाय हाय छोड़ छोड़ मरा मरा इत्यादि शब्द तिनके किये कोलाहलरूप महाशब्दवाला है अरु हे सौम्य! वेदान्तशास्त्र करके प्रतिपादित ब्रह्मआत्मा के अभेद ज्ञानरूप असंगशस्त्र से किये छेदन होनेवाला है। "असंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा"। ताते इस संसारको वृक्षरूपसे कहते हैं। हे सौम्य! यह संसाररूप वृक्ष पिप्पलके वृक्षवत् काम कर्म रूप वायु करके चलित किया हुआ सदाही चंचल स्वभाववाला है एतदर्थ इस को अश्वत्थ कहते हैं। अरु पशुपक्षी भूत प्रेतादि नीचयोनि-रूप नीची शाखावाला है अरु अनादि होनेसे बहुतकाल से प्र-वृत्त होरहा है ऐसा यह संसाररूप पिप्पलका वृक्ष है। तिस वृक्षका जो मूलहै "। तदेव शुक्रन्तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।" [सोई शुक्र सोई ब्रह्म सोई अविनाशी कहते हैं] अर्थात् जो उक्त संसार वृक्षका मूल है सोई शुद्ध चैतन्य आत्मारूप स्वयंज्योति स्वभाव वाला है अरु सोई सर्वसे बड़ा है एतदर्थ उसको ब्रह्म कहते हैं अरु उसको कालत्रय अबाध्य होने से अविनाशी कहते हैं। तथा च। "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं" "अनृतमन्यदतो-मर्त्यम्" वाणीसे कहा विकार (कार्य) नाममात्र है अरु इस ब्रह्म से अन्यवस्तु सर्व मिथ्या अरु मरण के योग्य हैं इन श्रुतियों के प्रमाण से "। तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदुनात्येति कश्चन"। [तिस विषे सर्वलोक आश्रयको पावे हैं तिसको कोई भी लंघिके वर्तता नहीं] अर्थात् जो संसाररूप वृक्षका मूल शुद्ध ब्रह्म अविनाशी है तिस सत्यब्रह्म विषे परमार्थ से गन्धर्व नगर मरीचिजल इन्द्रजाल इत्यादिकोंके समान अरु परमार्थ-रूप वस्तु के अज्ञानसे प्रतीयमान जे सत्यादि सर्व लोक सो उत्पत्ति स्थिति प्रलयविषे आश्रयको पावते हैं अरु 'जैसे घ-टादि कार्य मृत्तिकाके स्वरूपको त्यागके वर्तता नहीं' तैसे

कोई भी कार्य अपने मूल ब्रह्मको छोड़के बर्तता नहीं "। एत-द्वैतत् ।" [यहही सो ब्रह्महै] अर्थात् यह सोई ब्रह्महै जिसको नचिकेता ने पूछा है १ ॥

यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ॥ महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति २ ॥

हे नचिकेतः ! "। यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ।" [जो यह कुछ सर्व जगत् है सो प्राण (ब्रह्म) के होते चलता है (अरु) निकसा भया है] अर्थात् जो यह कुछ नाम-रूपात्मक जगत् है सो सर्व प्राणरूप ब्रह्मके होनेसे चलताहै अरु तिसही से निकसाभया नियमसे चेष्टा करता है ऐसा जो जगत् तिसकी उत्पत्त्यादिकों का कारण ब्रह्म है सोई "। महद्भयं वज्र-मुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।" [बड़ा है भयरूप है वज्रको उद्यम करनेवालेकी नाईं जो इसको जानता है सो अमरणधर्मा होताहै] अर्थात् जिस प्राणसंज्ञक ब्रह्मसे उत्पन्न भया यह जगत् रूप वृक्ष सो नियमसे चलता है सोई ब्रह्म सर्व से बड़ा है अरु तिससे सर्व जगत् भयको पावता है ताते भयरूप है अरु (जैसे वज्र के धारणकर्ता स्वामीको सम्मुख भया देखके भृत्यादि सर्व नियमसे उसकी आज्ञाविषे बर्तते हैं) तैसे सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र वायु अग्नि देवी देवता आदि सर्वजगत् अपने इन्द्रादि रूप अधिपतियों के सहित नियम से विश्रामरहित बर्तता है । ऐसे महाउग्र जगत्के स्वामी ब्रह्मको जो पुरुष शास्त्रयुक्ति प्रमाण से अपने शरीर विषे सर्व से पृथक् साक्षीरूपसे साक्षात् जानते हैं सो मरणधर्मरहित अमर होते हैं २ ॥

भयादस्याऽग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ॥ भयादि-न्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ३ ॥

हे नचिकेतः ! "। भयादस्याऽग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ।" [तिसके भयसे अग्नि तपता है (अरु) भयसे सूर्य तपता है]

अर्थात् उक्त परमात्माके भयसे अग्नि जो सर्वका तापक है सो तपता है अरु सूर्य दक्षिणायन उत्तरायण मार्गहुआ ऋतुओं को करता जिसकी आज्ञा विषे नियम से भ्रमण करता उसके भयविषे रहता है अरु " भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ।" [जिसके भयसे इन्द्र वर्षा करता है (अरु) वायु चलता है (अरु) पञ्चम मृत्यु दौड़ता है] अर्थात् जिस परमात्माके भय विषे अग्नि सूर्य तपते हैं उसही के भय विषे देवराज इन्द्र देवतादिकों की रक्षा करता हुआ वर्षा करता है अरु उसही के भयसे वायु (सूत्रात्मा) सर्वको अपने विषे (सूत्रमें मणिगणवत्) धारण किये चलता है अरु सर्वका नाशकर्ता जो मृत्यु सोभी उस परमात्माके भयको पाय कालरूप से सर्वदा दौड़ताही रहता है स्थिर कदापि होता नहीं । अर्थात् सर्व से समर्थ जगत् के नायक लोकपालनका जब वज्र के धारणकर्ता अति उग्र स्वामीवत् नियामक कोई न होय तब स्वामी के भयसे भयको प्राप्तभये भृत्यादिकवत् उनकी नियमित प्रवृत्ति बने नहीं ताते इन्द्रादि लोकपालनका नियामक कोई परमात्मा सर्वसे पृथक् अवश्य है यह सिद्ध भया ३ ॥

इह चेदशकद्बोद्धुम्प्राक्शरीरस्य विस्रसः ॥ ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ४ ॥

हे नचिकेतः ! सर्वको भयका कारण नियामक ब्रह्मको " इह चेदशकद्बोद्धुम्प्राक्शरीरस्य विस्रसः ।" [यहां शरीर के पतनसे पूर्व यदि जाननेको समर्थ भया जानता है] अर्थात् सर्व के नियामक ब्रह्मको इस मनुष्यशरीर विषे शरीर पात होने से पूर्व जीवतेही जानने को समर्थ हुआ जानता है तब संसार के सर्वबंधनोंसे रहित होता है । अरु जो कदापि मनुष्यशरीर पायके भी उस परमात्माको जो अपना आप है जानने में असमर्थ होताहै तब " ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते "

[तिसके न जानने से उत्पत्ति के आश्रय पृथिव्यादि लोकों बिषे शरीर धारणार्थ समर्थ होता है] अर्थात् यह मनुष्यशरीर जो विवेकादि गुण सम्पन्न है तिसके विद्यमान होतसंते भी जो पुरुष अपने पुरुषार्थ करके संसारकी निवृत्ति के कारण परमात्माको अपने आपबिषे सोहमस्मिभाव से जानने को प्रमाद करके असमर्थ होता है तब उत्पत्ति के आश्रय हुआ अपने बिषे नानाप्रकारके पशुआदि शरीरोंको धारण करने के बिषे समर्थ होता है । ताते हे सौम्य ! सूर्यादि सर्वका नियामक सिद्ध भया जो परोक्ष परमात्मा तिसके अपरोक्ष ज्ञानार्थ इस मनुष्यशरीर बिषे सर्व इन्द्रियों के विद्यमान होते अन्त्यावस्था का समय न देखके इसकी क्षणभंगुरता को विचार शीघ्रही पुरुषार्थ करना उचित है क्योंकि परमात्माका अपरोक्षज्ञानही संसारदुःखों की अशेषनिवृत्ति का कारण है अरु मनुष्यशरीर से इतर देवादिशरीरों बिषे सम्यक् अपरोक्षज्ञान की आशा न रखनी क्योंकि देवादि शरीरों बिषे विषयभोगकी तारतम्यता अधिक है ताते वहां विचार का अवकाश होता नहीं अरु तिन की प्राप्तिभी सुगम नहीं ताते अभिप्राय यह है कि इस मनुष्य-शरीरमें इन्द्रियादिकोंके पुरुषार्थ होत संते इन्द्रियोंको विषयों से उपरामकर अपने आप आत्माके अपरोक्षज्ञानार्थ पुरुषार्थ करना योग्य है ४ ॥

यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके ॥ यथाप्सु परीवददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ५ ॥

हे भगवन् ! सर्वलोकोंबिषे पृथक् पृथक् रीतिसे आत्माको कैसे देखते हैं सो आप कृपाकरके कहिये ॥ उ० ॥ हे नचिकेतः ! " यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके " [जैसे दर्पणबिषे तैसे बुद्धिबिषे (अरु) जैसे स्वप्नबिषे तैसे पितृलोक

विषे (देखते हैं)] अर्थात् हे नचिकेतः ! जैसे लोक दर्पणविषे प्रतिबिम्बरूप अपने आपको अत्यन्त स्पष्ट जैसेका तैसाही देखतेहैं तैसे इस मनुष्यलोक में निर्मल भई बुद्धिविषे अर्थात् जो कर्मउपासनाऽऽदिसाधनों करके मल विक्षेपरूप दोष से रहित शुद्धहुई निर्मल निर्दोष बुद्धि तिसविषे शास्त्रके प्रमाण वाक्यरूप कलईके संयोगसे तिस विषे प्रतिबिम्बित हुआ जो चिदाभास तिसके द्वारा अपने बिम्बरूप आत्माका दर्शन (अनुभव) होता है । अरु जैसे स्वप्न विषे जाग्रत्की वासना से उत्पन्नभया जगत् सो अस्पष्ट है अर्थात् ज्योंका त्योंही नहीं भासता तैसेही पितृलोकविषे आत्माका दर्शन अस्पष्टही होता है क्योंकि पितृ देवताओं को कर्म के फलभोग्यों विषे आसक्तता होने से उनकी बुद्धि सविक्षेपही अधिक होती है ताते उनको अपने आप आत्माका दर्शन स्पष्टही होता है । अरु "यथाऽप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके" [जैसे जलविषे देखतेहैं तैसे गन्धर्वलोकविषे (देखतेहैं)] अर्थात् जैसे जलविषे अस्पष्ट अंगोंवाला अपने प्रतिबिम्बरूपको देखते हैं तैसेही गन्धर्वलोक विषे अपने आप आत्माका स्पष्टही दर्शन होता है इसही प्रकार अन्य लोकोंविषे भी आत्माका दर्शन स्पष्टही होता है यह श्रुति शास्त्रोंके प्रमाण से जानाजाता है । अरु "छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ।" [ब्रह्मलोकविषे छाया (अरु) आतप (धूप) वत् (देखतेहैं)] आर्थात् एक ब्रह्मलोकविषे तो छाया अरु धूपवत् अत्यन्तही स्पष्ट अपने आप आत्माका ज्यों का त्यों दर्शन होता है । परन्तु सो ब्रह्मलोक अत्यन्त श्रेष्ठकर्म अरु उपासनाका फल होने से उसकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है अब ऐसे कर्म उपासना कहां हैं कि जिससे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होय ताते अभिप्राय यहहै कि मुमुक्षुको जन्म मरणादि सर्व दुःखोंकी निवृत्तिके लिये यहां इस मनुष्य जन्ममेंही साधन-सम्पन्न होय आत्मदर्शनार्थ प्रयत्न करना योग्य है ५ ॥

इन्द्रियाणामपृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ॥ पृथगु-त्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ६ ॥

प्र० ॥ हे भगवन् ! आत्मा कैसे जाननेयोग्य है अरु तिसके जाननेविषे क्या प्रयोजन है सो कृपाकरके कहिये ॥ उ० ॥ हे नचिकेतः ! "इन्द्रियाणामपृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ॥ पृथगुत्पद्यमानानां" [भिन्न उत्पन्नभये इन्द्रियनके विलक्षण-रूपताको (अरु) भिन्न जो उत्पत्ति प्रलय होती है तिनको] अर्थात् अपने अपने विषयके ग्रहण करनेरूप प्रयोजनसे अपने कारण आकाशादिकों से भिन्न उत्पन्न भये इन्द्रियोंके अत्यन्त शुद्ध केवल चिन्मात्र आपके स्वरूप अरु स्वभाव से विलक्षणरूप तिसको अरु भिन्न उत्पन्नभये इन्द्रिय तिनहीं इन्द्रियनके जाग्रत् अरु सुषुप्ति अवस्थाकी अपेक्षासे उत्पत्ति अरु प्रलय होता है आत्माकी अपेक्षासे नहीं तिनको "मत्वा धीरो न शोचति" [जानके धीरपुरुष शोकको प्राप्त होता नहीं] अर्थात् आत्मा अनात्माको उक्त विचारसे यथार्थ जानके बुद्धिमान् विवेकी पुरुष शोकको पावता नहीं । क्योंकि आत्माको नित्य एकता स्वभाववाला होनेकरि अव्यभिचारतासे शोकादिकोंकी कार-णताके असंभव से । तथाच। "तरति शोकमात्मवित्" । आत्मवेत्ता शोकको तरता है ६ ॥

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ॥ सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ७ ॥

हे नचिकेतः ! "इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्" [इन्द्रियोंसे परे मनहै मनसे सत्त्व (बुद्धि) उत्तम है] ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! इस श्रुतिसे पूर्व छठी श्रुतिमें आत्मासे इन्द्रियोंका विलक्षणभाव कहा है तातें पूर्व तीसरी वल्लीविषे 'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः' इन्द्रियोंसे परे अर्थ कहाहै । यहां तिसको छोड़के 'इन्द्रियेभ्यः परं मनः' इन्द्रियों से परे मन है इस वाक्यसे जो

आत्मा का सर्वात्मपना कहतेहौ सो कैसे संभवेगा ॥ ३० ॥ यहां शब्दादि विषयरूप अर्थन को अनात्मभाव करके इन्द्रियनके तुल्य जातिवाले होनेसे इन्द्रियनके ग्रहणसेही अर्थोंका ग्रहण किया जानना और अर्थ पूर्ववत् है । ताते इन्द्रियोंसे परे मन है अरु मनसे सत्त्व (बुद्धि) उत्तम (पर) है । अरु "सत्त्वादधिमहानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्" [बुद्धिसे महत्तत्त्व परेहै (अरु) महत्तत्त्वसे अव्यक्त उत्तमहै] अर्थात् बुद्धिसे परे महत्तत्त्व है अरु महत्तत्त्वसे अव्यक्त कहिये (अज्ञान) उत्तम कहिये परेहै ७ ॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ॥ यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वञ्च गच्छति ८ ॥

हे नचिकेतः ! "अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्गएव च" [अव्यक्तसे तो परे पुरुषहै (सो) व्यापकहै (अरु) पुनः अलिङ्गहीहै] अर्थात् अव्यक्त जो अव्याकृत (प्रकृति) तिससे पुरुष पृथक्है अरु आकाशादि सर्वका कारण होनेसे व्यापक है अरु जिस करके वह पुरुष जानाजाय ऐसे जे बुद्ध्यादि लिङ्ग (चिह्न) तिन सर्व से रहित होनेसे आत्मा अलिङ्ग है अर्थात् बुद्धि अरु सुखदुःख आदिक जो है सो सर्व गुणरूप होने से आश्रयसहित होनेको योग्य है (जैसे रूपादि गुण घटके आश्रय होते हैं) तद्वत् इसप्रकार वैशेषिक मतवादी जो अनुमान करते हैं सो असत्य है क्योंकि उस बुद्धि आदिकन को आश्रयसहितपनेमात्रके साधने बिषे पिष्टपेषण अर्थात् पीसेहुयेको पुनः पीसनेवत् सिद्धवस्तु के साधनेरूप दोष होनेसे अरु मनकोही कामादि गुणवाला श्रुति बिषे श्रवण किया है ताते बुद्धिआदि गुण आत्मा के आश्रय रहते हैं इस वेदबाह्य कल्पना से अरु आत्माको निर्गुणभाव से " केवलो निर्गुणश्च " प्रतिपादक

श्रुति शास्त्र से विरोध होताहै ताते भी उनका कहना असत्यही है। अरु सुषुप्तिसमाधिआदि अवस्था में बुद्धिआदि गुणों का अभाव होताहै वहां अग्निके लिङ्ग (चिह्न) धूमवत् बुद्धिआदि गुण आत्मा के नहीं ताते वास्तव में आत्मा निर्गुण होने से अलिङ्गही है। अरु सर्व संसार के धर्मसे रहितहै ताते ।" यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति" [जिसको जानके जन्तु मुक्तही होता है (अरु) अमरभावको पावता है] अर्थात् अलिङ्ग जो आत्मा है तिसके स्वरूपको आचार्य अरु शास्त्रद्वारा जानके जन्तु जो पुरुष सो जीवता हुआही कामकर्मादिरूप अविद्याग्रन्थिन सों मुक्त होता है अरु शरीर के पतनहुये साक्षात् मोक्षरूप अमरभावको प्राप्त होताहै। सो अलिङ्ग चैतन्य पुरुष अव्यक्त से परे है इति सिद्धम् ८ ॥

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्च नैनम् ॥ हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ९ ॥

प्र० ॥ हे भगवन् ! जब पुरुष (आत्मा) अलिङ्ग है तब तिसका दर्शन कैसे होय क्या किसीका विषय होने से आत्माका दर्शन कहने योग्यहै अथवा अविषय होनेसे तिसके दर्शनार्थ उपाय कहनेयोग्य है सो आप आज्ञा करिये ॥ उ० ॥ हे सौम्य! "। न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्च नैनम्" [इसका रूप दर्शन के विषयविषे स्थित नहीं अरु कोईभी इस को चक्षु से देखता नहीं] अर्थात् हे सौम्य ! तैंने पूछा कि क्या किसी का विषय होनेसे आत्मा का दर्शन कहने योग्य है सो बने नहीं क्योंकि जो वस्तु रूपादि गुणवाली होती है सो चक्षु आदि इन्द्रियों करके दर्शन का विषय होने योग्य होती है परन्तु रूपादि गुण के अभाव से इस प्रत्यगात्मा पुरुष का रूप

दर्शन के विषयविषे स्थित नहीं एतदर्थ कोई भी पुरुष इस प्रत्यगात्माको चक्षुआदि इन्द्रियों करके जानतानहीं। अब दूसरे विकल्प का उत्तर श्रवण कर "। हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति" [हृदयविषे स्थित मनकी नियामक बुद्धि से मनन करके प्रकाशित हुआ यह (ब्रह्म है) ऐसे जो जानते हैं सो मरणधर्मरहित होते हैं] अर्थात् जब विषयों से बाह्येन्द्रियों के उपराम भये भी मन विषयों को चितवता है तब मुमुक्षु की बुद्धि इस प्रकार से मनकी नियामक होती है कि हे मन ! तू किस प्रयोजन के अर्थ पिशाचवत् विषयादिकों की ओर अहर्निश दौड़ता है तहां जो कदापि ऐसा कहे कि मैं अपने प्रयोजनार्थ दौड़ताहौं सो असंभव है क्योंकि तुझको जड़रूप होने से तेरा किसी भी प्रयोजन के साथ सम्बन्ध संभवता नहीं । अरु क्षीण होनेके स्वभावादिक दोषकरके दूषित जे विषय तिनसे सम्बन्ध करि तुझको प्रयोजन का असंभव है ताते विषयार्थ भी तेरा दौड़ना अयोग्य है। अरु जो कदापि ऐसा कहे कि मैं चैतन्य के अर्थ दौड़ता हौं तो सो भी बने नहीं क्योंकि "असंगोह्ययं पुरुषः" इस प्रमाण से चैतन्य सर्व से असंग अरु परमानन्द स्वभाववाला है ताते उस के अर्थ भी तेरा दौड़ना असंभवही है। इसप्रकार बुद्धि मन की नियामक है ताते शास्त्रोंविषे बुद्धि को मनीषा कहते हैं। एतदर्थ मन की नियामक बुद्धि से सम्यक् दर्शनरूप मनन-विचाररूप मन करके प्रकाशित हुआ आत्मा सोहमस्मिभाव से जानने योग्य है तिस आत्मा को यह ब्रह्म है ऐसे जो जानते हैं सो मरणधर्मरहित अमर साक्षात् ब्रह्मरूपही होते हैं "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" ६ ॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ॥ बुद्धिश्च न विचेष्टेत तामाहुः परमां गतिम् १० ॥

हे सौम्य ! कईएक वेदान्तशास्त्र के श्रवणकर्ता पुरुषों को श्रवण से प्रमाण अरु मनन से प्रमेयविषयक संशय की निवृत्ति होने से भी चित्त की अनेकाग्रतारूप प्रतिबन्ध संभवता है तिसके निवारणार्थ योग का अनुष्ठान करना योग्य है ऐसा श्रुति उपदेश करे है ॥ हे नचिकेतः ! " यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह " [जिसकाल विषे पांच ज्ञानेन्द्रिय अन्तःकरण करके सहित स्थित होते हैं] अर्थात् जिसकाल विषे श्रोत्रादि पांचज्ञानेन्द्रियां हैं सो जिसके पीछे पीछे चलती हैं तिस संकल्पादि व्यापारवाले अन्तःकरण के सहित अपने अपने विषयों से रचित हुये अन्तर्मुख आत्मा विषेही स्थित होते हैं । अरु " बुद्धिश्च न विचेष्टत तामाहुः परमां गतिम् " [पुनः बुद्धि चेष्टा करे नहीं तिसको परमगति कहते हैं] अर्थात् निश्चयात्मक जो बुद्धि सो अपने व्यापारोंविषे चेष्टा करे नहीं तिस निर्विकल्प अवस्था को योगीजन परमगति कहते हैं १० ॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ॥
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ११ ॥

हे नचिकेतः ! " तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् । अप्रमत्तः " [तिसको योग ऐसे मानते हैं स्थिर इन्द्रिय की धारणा को प्रमाद रहित] अर्थात् इन्द्रिय अरु मनकी निरोधरूप अवस्था को योगकरके मानते हैं । अरु जिस करके सर्व अनर्थ के संयोग की वियोगरूप यह योगी की अवस्था है अर्थात् व्यवहार से उपराम भया मन जब सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है तब सो सर्व अनर्थों की बीजरूप अवस्था होती है क्योंकि अविद्यात्मक सुषुप्तिसेही जाग्रत् स्वप्नरूप अनर्थकारी प्रपञ्च प्रकट होता है । तब मनको उस अनर्थरूप अवस्था के निवारणार्थ " अहं ब्रह्मास्मि " मैं पूर्णब्रह्म हौं इस अभ्यास विषे जोड़ना अरु तिस अभ्यास विषे जोड़ाभया भी मन जब

पूर्वाध्यास से विषयों बिषे विक्षेप को प्राप्त होय तब विषयों बिषे क्षीणतादि दोष देख ग्लानि मानता हुआ विषयों से मनको निवारणकरे। अरु विषयोंसे निवारण किया मन जब बाहर भीतर की प्रवृत्ति से रहित होताहै तब सो कषायरूप अवस्था होती है तिससे भी रोका हुआ मन न जागता है न सोवता है न दोनों के मध्य स्थित होता है किन्तु अपने सर्व दोषोंसे रहित पूर्णब्रह्मका प्रकाशक होने करके सूर्यके प्रकाशमें दीपकके प्रकाशवत् क्षीण होता है तब सो सर्व अनर्थों की वियोगरूप अवस्था होती है। एतदर्थ जिसका नाम योगहै सो मुमुक्षुको सर्व अनर्थोंसे वियोग करनेवालाहै। ताते इस उक्त योग अवस्थाबिषे अविद्याके आरोप से रहित स्वरूप की स्थितिवाला आत्मा जब स्थिर बाहर अरु भीतर के इन्द्रियों की धारणा के अर्थ प्रमादरहित होताहै अर्थात् जिसकाल बिषे इन्द्रिय अरु अन्तःकरणकी एकाग्रताके अर्थ नित्य प्रयत्नवाला होता है " तदा भवति " [तिसकाल बिषे होता है] अर्थात् जिससमय इन्द्रिय अरु अन्तःकरणकी एकाग्रता के अर्थ नित्य प्रयत्नवान् होताहै तिसकाल योगबिषे प्रवृत्त होता है अरु जिस करके बुद्धि आदिकोंकी चेष्टाके अभाव भये प्रमाद का सम्भव नहीं है तिसही करके बुद्धि आदिकके चेष्टा की निवृत्ति से पूर्वही प्रमाद के अभावार्थ प्रयत्न कर्तव्य है। अथवा जबही इन्द्रियोंकी धारणा स्थिर होयहै तबही निरंकुश प्रमाद रहितपना होता है। याते तब प्रमादरहितपना होताहै ऐसा कहते हैं क्योंकि। " योगोहि प्रभवाप्ययौ " [योगही उत्पत्ति लयरूप है] अर्थात् योग जो है सो उत्पत्ति अरु लय धर्मवाला होताहै एतदर्थ लयके निवारणार्थ प्रमाद का अभाव करना योग्यहै यह तात्पर्य है ११॥

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ॥ अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते १२ ॥

प्र० ॥ हे भगवन् ! आपने कहा कि बुद्धि आदिकनकी चेष्टा से रहित मुमुक्षुओंकी परमगति ब्रह्मका अस्तित्व है परन्तु जो बुद्धि आदिककी चेष्टाका विषय ब्रह्म होय तो यह सो इसप्रकार अङ्गुलीनिर्देशवत् ब्रह्मका विशेषपना ग्रहण होताहै अरु बुद्धि आदिकों के उपराम भये यह सो इस प्रकार के ग्रहण के कारणके अभावसे अप्रतीयमानभया ब्रह्महै नहीं ऐसा सिद्ध होगा। अरु जो वस्तु बुद्ध्यादिकरणों का विषय होती है सो है अरु जो वस्तुकरणोंका विषय नहीं सो नहीं ऐसा लोकविषे प्रसिद्ध है। अरु योगविषे करणादिक जो ब्रह्मके अस्तित्व होनेमें कारण हैं सो लय होते हैं तब ब्रह्मका अस्तित्व बने नहीं ताते योग अनर्थकारी भया ॥ उ० ॥ हे नचिकेतः ! यह आत्मा ब्रह्म 'नैववाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा' [न वाणीसे न मनसे न चक्षुसे पावनेको शक्यहै] अर्थात् इन्द्रियादि बुद्धि पर्यन्त क्रम से सर्व जिस महासूक्ष्म आत्माविषे योगद्वारा लय होते हैं सो आत्मा वाणी उपलक्षण से कर्मेन्द्रियां अरु चक्षु उपलक्षण से ज्ञानेन्द्रियां अरु मन उपलक्षणसे अन्तःकरण इन किसी करके भी पावने को शक्य नहीं यह सत्य है तथापि सर्व विशेषताके अभावहुये आत्मा नहीं ऐसा नहीं वह निर्विशेष अविषय हुआ भी जगत् का मूलहै ऐसा जानने से अरु कार्य के विलयको अस्ति (है) पने विषे स्थित होनेसे आत्मा विद्यमान नहीं है। अर्थात् स्थूलरूप कार्य के विलय भये पीछे सूक्ष्मरूप कारण अवशेष रहताहै 'जैसे दण्डसे भंगभये घटका अस्तित्व कपाल विषे कपाल के भंगका अस्तित्व ठीकरा विषे ठीकरे के भंगका अस्तित्व चूर्ण विषे तिसका अस्तित्व मृत्तिका वा परमाणुविषे' इस प्रकार जहां पर्यंत दर्शन की व्याप्ति है तहां पर्यन्त देखते जहां नहीं देखते हैं तहां भी सावयव वस्तुके लयको अवश्य होनेसे सत्मात्र वस्तुही अमूर्त होती है इस प्रकार कार्य जो है सो सूक्ष्मवस्तुके अधिक न्यूनपने की परम्परासे जानाहुआ बुद्धि

की स्थितिको जनावे है ॥ प्र० ॥ हे प्रभो ! जो दृश्यहै सो असत्यहै ८ जैसे स्वप्नका दर्शन ? इस व्याप्ति के देखने से है पना करके दृश्य जो वस्तु है तिसको असत्य होनेसे सद्बुद्धि भी नहीं है ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! सद्बुद्धि भी नहीं है इस प्रतीतिसे अवश्य है ऐसा मानना योग्यहै क्योंकि बुद्धि भी अपने विषय के विलयसे विलयभाव को प्राप्त होती है परन्तु तब भी सो बुद्धि ब्रह्म है ऐसी सद्वृत्तिरूप भर्ग सहित भईही लय होती है क्योंकि जिसकरके हम मनुष्यों को सत् अरु असत्य वस्तुके यथार्थ रूपके जानने के विषे बुद्धिही प्रमाण है तिसकरके सो बुद्धि सद्वृत्तिरूप भर्गवाली भईही लय होती है । अरु जो कदापि जगत् का मूल सत् न होय तो असत् के अन्वय करके युक्त भयाही यह कार्य नहीं है ऐसा ग्रहण करोगे परन्तु ऐसा नहीं ग्रहण करते हैं किन्तु सत् है सत् है ऐसेही ग्रहण करते हैं ' जैसे मृत्तिकादिकों का कार्य घटादिक सो मृत्तिका के अन्वय करके युक्तहुआही सत् ऐसे ग्रहण करते हैं असत् नहीं ' तैसे ही जगत् भी जानना ताते जगत् का मूल आत्मा है ऐसेही जानने योग्य है ॥ प्र० ॥ जगत् का मूल जो ब्रह्म सो नहीं है इस प्रकार जानने से भी विपरीतपने करके ब्रह्म का ज्ञान सम्भवे है याते ब्रह्मज्ञान की इच्छावाले मुमुक्षु करके ब्रह्म है ऐसेही काहे को जानने योग्य है ॥ उ० ॥ " अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते " [है ऐसे कहनेवाले से अन्य बिषे सो (ब्रह्म) कैसे जानने में आवे] अर्थात् आत्मा है ऐसे कहने वाले वेदार्थ के अनुसारी श्रद्धावान् आस्तित्ववादी से अन्य विषे अर्थात् जगत् का मूल आत्मा नहीं है किन्तु कारण के अन्वय से रहित भयाही यह अभाव पर्यन्त कार्य लय होता है ऐसे माननेवाले विपरीतदर्शी नास्तिकवादी बिषे सो ब्रह्म य-थार्थरूप से कैसे जानने में आवे अर्थात् उन्हों करके किसी प्रकार भी जानने में आवता नहीं १२ ॥

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ॥ अ-
स्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति १३ ॥

हे सौम्य ! उक्त हेतु से असुरभावरूप असद्वादी के पक्षको त्यागके सत्कार्यरूप उपाधिवाला आत्मा " अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन " [है ऐसेही तत्त्वभाव से जानने योग्य है] अर्थात् नास्तिकपक्ष को त्यागके आत्मा है इसप्रकार आस्तिकभावसेही जानने योग्य है ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! सोपाधि आत्मा के ज्ञानसे मोक्ष का असंभव है ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! उपाधि भी अन्यरूप नहीं " वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् " जैसे मृत्तिका से उत्पन्न भया घटादि कार्यरूप विकार सो वाचारम्भणमात्र अर्थात् नाममात्रही है इस श्रुति के प्रमाण से कार्य जो है सो कारण से भिन्न नहीं है अर्थात् कारण से कार्य की पृथक् सत्ता नहीं । तब उस निरुपाधि अलिंग अरु सत् असत् आदि जे वृत्तियों के विषय तिनसे रहित आत्मा का ज्ञात अज्ञात से भिन्न अद्वैत तत्त्वभाव होताहै तिस तत्त्वभावरूप से आत्मा जानने में आवता है । इसप्रकार इस मन्त्र के पूर्वार्ध का पूर्व मन्त्र से सम्बन्ध है । हे नचिकेतः ! सोपाधिक अरु निरुपाधिकरूप जो अस्तित्वपना अरु तत्त्वभाव है तिन " चोभयोः " [दोनों को मध्य] " अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति " [है ऐसेही प्रतीत भये का तत्त्वभाव सन्मुख होता है] अर्थात् विशेष अरु निर्विशेष दोनों के मध्य प्रथमहै ऐसे सत्कार्यरूप बुद्ध्यादिक उपाधि के किये अस्तित्वपनेकी वृत्तिसे प्रतीत भये आत्माका तिस प्रतीतिके पीछे सर्व उपाधि रहित स्वस्वरूपवाला " अस्थूलमनएव ह्रस्वमदीर्घमदृश्येऽनात्म्येऽनिलये " इत्यादि श्रुतियों ने कथन किया जो ज्ञात अज्ञात वस्तु से अन्य अद्वैत स्वभावरूप तत्त्वभाव सो आत्मा के प्रकाश करने के निमित्त प्रथम आत्मा है

ऐसे जाननेवाले पुरुषके अर्थ भलीप्रकार सन्मुख होताहै १३ ॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ॥
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते १४ ॥

हे नाचिकेतः ! ।" यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।" [इसकी बुद्धिविषे स्थित जे कामहैं सो सर्व जिसकाल विषे भलीप्रकार छूटजातेहैं] अर्थात् निर्विशेष अस्तिमात्र ब्रह्मके बोध होने से पूर्व इस विद्वान्‌की बुद्धिविषे स्थित जो स्वर्ग सुखादि भोगोंकी कामना सो सर्व आत्मानात्म के सत्यासत्य विचारसे जिस काल में भलीप्रकारसे नाश होती है तब "। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते "। [तिसकाल विषे मनुष्य मरणरहित होता है (अरु) यहांही ब्रह्मको पावता है] अर्थात् जब मुमुक्षुकी बुद्धिस्थ सर्वकामना अशेष नाशको प्राप्त होतीहै तब बोधसे पूर्व मरने योग्य जो मनुष्य था सो बोध होने के उत्तरकाल विषे अविद्या काम कर्मरूप मृत्यु के विनाशसे मरण रहित अमर होता है अरु वह " न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति " इस श्रुतिके प्रमाणसे उत्क्रमण ; गमन ; के अभावसे यहांही अर्थात् इस शरीर विषेही दीपकके निर्वाणवत् अर्थात् जैसे दीपकका प्रकाश जब तेल ; बत्तीरूप ; उपाधि करके रहित होताहै तब जहां निर्वाण होता (बुझता) है तहांही अपने सामान्य कारणरूप प्रकाशविषे अभेद होता है तैसेही सम्यक् आत्मज्ञानी पुरुष शरीरावसान समय सर्वउपाधि से रहित हुआ इसही शरीरविषे अपने आप वास्तविक ब्रह्मरूप को पावता है अर्थात् ब्रह्मही होता है । तथा च " ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति " १४ ॥

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ॥ अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् १५ ॥

प्र० ॥ हे भगवन् ! कामनाका समूल विनाश कब होता है

सो कृपाकरके कहिये ॥ ३० ॥ हे नचिकेतः ! "यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।" [जब यहां बुद्धिकी सर्व ग्रंथियां विनाश को पावती हैं] अर्थात् जब यहां पुरुषके जीवतेही दृढ़बन्धनरूप जे अनात्मविषयक अहंता ममता अर्थात् यह संघातरूप शरीरही मैंहौं मेरा यह धन है मैं सुखीहौं दुःखीहौं इत्यादि भावनारूप अविद्यात्मक वृत्तिरूप बुद्धि की ग्रंथियांहैं सो सर्व " अहं ब्रह्मास्मि" मैं असंसारी ब्रह्महूं ऐसी जो भावना रूप सम्यक् ज्ञानरूप वृत्तिकी उत्पत्ति से विनाशको पावे हैं "अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम्।" [तब मनुष्य मरण रहित होता है इतनाही उपदेश है] अर्थात् जब अविद्याकी अनात्मविषयिणी अहंता ममता भावनारूप दृढ़बंधनकर्ता वृत्ति सो ब्रह्मात्माके अभेद सम्यक् ज्ञानकरके विनाशको प्राप्त होतीहै तब संसारविषयक सर्व कामना सहित मूल अविद्या नाश होती है तिसके पश्चात् सम्यक् आत्मबोध विना अज्ञानवश वारंवार जन्ममरण योग्य जो मनुष्य सो भूत भविष्यत् वर्तमान कालत्रयके जन्म मरणसे रहित होता है। हे सौम्य ! इतनामात्रही सर्व उपनिषद् वेदान्त शास्त्रका सिद्धान्त उपदेश है इससे अधिक कोई उपदेश नहीं १५ ॥

शतञ्चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासाम्मूर्द्धानमभिनिःसृतैका ॥ तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति । विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति १६ ॥

हे सौम्य ! सर्व विशेषतारूप उपाधिसे रहित व्यापक ब्रह्मरूप आत्माके सम्यक्ज्ञानसे सर्व अविद्याआदि ग्रंथियोंके विनाशवाले मनुष्य जीवतेहुये ही ब्रह्मभूत विद्वानोंका लोकान्तर विषे किंवा इस लोकगत अन्य शरीरों विषे गमन होता नहीं क्योंकि 'अत्र ब्रह्म समश्नुते' "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति " इत्यादि श्रुतियोंके सिद्धान्तप्रमाणसे ॥ अब

मन्द बोधवाले ब्रह्मवेत्ता अरु अन्य पंचाग्नि विद्याआदि विद्यावाले जे ब्रह्मलोक के अरु तिनसे विपरीत जे संसार के भागी पुरुष हैं तिनकी यह कोई एक गति प्रसंगपाय के प्राप्त उत्तम ब्रह्मवेत्ताकी विद्याके फलकी स्तुत्यर्थ। किंवा नचिकेताने अग्निविद्याका प्रश्न कियारहा अरु मृत्यु भगवान् ने तिसका उत्तर भी कहारहा तिस विद्या के फलकी प्राप्तिका प्रकार कहना योग्य है इस अभिप्राय को लेके मृत्यु भगवान् इस मंत्रका आरंभ करते हैं। हे नचिकेतः! ।" शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासाम्मूर्द्धानमभिनिःसृतैका "। [एकसौ एकहृदयसे निकसी नाड़ियां हैं तिनके मध्य मस्तकको भेदकेनिकसी भई एक है] अर्थात् एकसौ एक सुषुम्नानामवाली पुरुष के हृदय से निकसीभई नाड़ियां हैं तिनसर्व के मध्य मस्तक को भेदनकरके निकसी हुई सुषुम्ना नाम्नी एक मुख्य नाड़ी है तिस नाड़ीसे अन्तकालमें हृदयाविषे मनको वशकरके मनको जोड़े अरु ।" तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति "। [तिस नाड़ीसे ऊपर जाताहुआ मरणधर्म से रहित भावको पावता है] अर्थात् हृदय से निकली मस्तक भेदके ऊपरगई जो सुषुम्नानाम्नी एक मुख्य नाड़ी तिस नाड़ीद्वारा ऊपरको जाताहुआ सूर्यरूप द्वारसे आपेक्षिक मरणधर्म से रहित भावको पावता है क्योंकि " आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं हि भाष्यते " सर्वभूतों के प्रलय पर्यन्त जो ब्रह्मलोक स्थान है तिसको अमरभाव कहते हैं। इस स्मृतिके प्रमाणसे उस ब्रह्मलोकगत अनुपम भोग्यको भोगके ब्रह्मदेव के साथ कालान्तर में मुख्य अमर भावको पावता है अरु ।" विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति "। [सर्व ओरसे अन्य नाड़ियां गमन के विषे होती हैं] अर्थात् एक सुषुम्ना नाड़ी से इतर सर्वओर से नानाप्रकार की अन्य नाड़ियां हैं सो प्राण के निकसने विषे अर्थात् संसार की नानायोनियों की प्राप्ति विषे निमित्त होती हैं १६ ॥

अंगुष्ठमात्रःपुरुषोन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्नि-विष्टः । तंस्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुंजादिवेषिकां धैर्येण ॥ तंविद्याच्छुक्रमसृतं तं विद्याच्छुक्रमम्टतमिति १७ ॥

हे सौम्य ! अब सर्ववल्लियोंकी समाप्त्यर्थ कहते हैं। हे नचिकेतः ! " अंगुष्टमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संन्निविष्टः ।" [अंगुष्ठमात्र पुरुष अन्तरात्मा सदा जनोंके हृदय विषे स्थित है] अर्थात् हृदयकमलके संयोगसे अंगुष्ट प्रमाण भया जो चैतन्यपुरुष कि जो सर्वत्र पूर्ण है सो सर्वदा जनोंके सम्बन्धिहृदय विषे स्थित है सो पूर्व चतुर्थवल्लीके १२ वें १३वें मंत्रविषे व्याख्यान किया है ।" तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादि-वेषिकां धैर्येण।" [तिसको मुञ्जआदि तृणसे ईषिका (शलाका) वत् धैर्यकरके शरीरसे भिन्न करे] अर्थात् जो हृदयकमलवि-शिष्ट चैतन्य पुरुष है तिसको " जैसे मुञ्जनाम तृणसे पृथक्कर तद्गत शलाका (तूरी. सरकंडा) को प्रत्यक्ष निवारण देखते हैं " तैसेही अप्रमादता से अपने अन्नमयादि आनन्दमय पर्यंत पंचकोशात्मक शरीरसे भिन्नकर साक्षात् " सोहमस्मि " भावसे अनुभव करना अरु ।" तं विद्याच्छुक्रमसृतं तं वि-द्याच्छुक्रमसृतामिति ।" [तिसको सम्यक्ज्ञान से शुद्ध अरु अमृतरूप जानना] अर्थात् पंचकोशात्मक शरीरसे भिन्न किया जो अपना आप चैतन्य पुरुष तिसको सर्व उपाधि अरु तत्तद्धर्मरहित सदा शुद्ध असृतरूप ब्रह्म जानना । तिसको शुद्ध अरु अमृतरूप जानना । यहां जो द्विवार कथन है सो उपनिषद्की समाप्ति सूचनार्थ है १७ ॥

मृत्युप्रोक्तान्नचिकेताऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगवि-धिञ्च कृत्स्नम् ॥ ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विद्ध्यात्ममेव १८ ॥

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ॥
तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

इति कठोपनिषत् समाप्ता शुभम् ॥

हे सौम्य ! अब विद्याकी स्तुत्यर्थ यह भगवान् वैवस्वत अरु नचिकेताकी आख्यायिकाके अर्थकी समाप्ति कहते हैं ।'मृत्युप्रोक्तान्नचिकेताऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिंश्च कृत्स्नम् ।' [यम ने कहा इस विद्याको पुनः सम्पूर्ण योगविधिको नचिकेता पायके] अर्थात् आदिसे षष्ठवल्ली के सत्रहवें मंत्रपर्यन्त भगवान् यमराज ने कथन किया इस विद्याको अरु सामग्री फल सहित सम्पूर्ण योगकी विधि को नचिकेता यमके दिये वरदानसे पायके '। ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ।' [मृत्युराहित हुआ ब्रह्मको प्राप्त होताभया अन्यभी जो ऐसे अध्यात्मको जानता है सो] अर्थात् नचिकेता यमदत्त वरदानसे विद्या पायके धर्म अधर्म अरु मृत्युसे रहित होय काम कर्म अविद्यासे रहितभया ब्रह्मको प्राप्त (मुक्त) होता भया । तहां केवल नचिकेताही ब्रह्मको प्राप्तभया उससे अन्य न होय ऐसा नहीं किन्तु अन्यभी जो मुमुक्षु पुरुष नचिकेतावत् निर्दोष होय तिसही अध्यात्म अर्थात् अपने आप प्रत्यगात्माको उक्त रीतिसे जानता है सो ऐसे जाननेवालाभी " पुण्यपापे विधूय " पुण्य पापादि सर्व अनात्मधर्म से भली

प्रकार शुद्ध साक्षात् सोहमस्मिभावरूप प्राप्तिसे मृत्युसे रहित साक्षात्‌ब्रह्मही होताहै। तथा च "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" ॥१८॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयोपनिषत्सु तृतीया चादितः
षष्ठवल्ली समाप्ता ॥ ६ ॥

इति श्रीयजुर्वेदीयकठोपनिषत्समाप्ता ॥

इति श्रीयजुर्वेदीयकठवल्ली उपनिषद्‌की पंचोली यमुनाशंकर नागरब्राह्मणकृत भाषाटीका समाप्ता ॥



विक्रयार्थ पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

नाम पुस्तक.	मूल्य.
पंचोली यमुनाशंकर कृत	
ईशावास्य उपनिषद् सटीक	-)॥
केनोपनिषद् सटीक	=)
प्रश्नोपनिषद् सटीक	≡)
मुंडक उपनिषद् सटीक	=)।
मांडूक्योपनिषद् सटीक	॥=)
तैत्तिरीयोपनिषद् सटीक	।-)॥
ऐतरेयोपनिषद् सटीक	=)॥।
छान्दोग्योपनिषद् सटीक	१-)
उपनिषत्सार	-)॥
रायबहादुर बाबू जालिमसिंह कृत	
ईशावास्य उपनिषद् सटीक	=)
केनोपनिषद् सटीक	=)॥
कठवल्लीउपनिषद् सटीक	॥)
प्रश्नोपनिषद् सटीक	।=)
मुण्डक उपनिषद् सटीक	।=)
मांडूक्योपनिषद् सटीक	=)
तैत्तरीयोपनिषद् सटीक	॥)
ऐतरेयोपनिषद् सटीक	≡)
अष्टावक्रगीता सटीक	१।)

नाम पुस्तक.	मूल्य.
रामगीता सटीक	॥।)
चैतन्यचन्द्रोदय प्रथमखंड	।=)
भगवद्गीता पञ्चरत्न मूल	।=)
तथा मोटे अक्षर	॥।-)
पंचदशी संस्कृतटीका सहित	॥।)
तर्कसंग्रह पदार्थादर्श अर्थात् तर्कता न्यायशास्त्र	-)
ईश्वरदीपिका उर्दू नागरी	=)
योगवाशिष्ठ ६ सरग मुजल्लद	६)
योगवाशिष्ठसार सटीक	)॥
ग्रन्थगुरुनानकशाह	५॥)
जपग्रन्थ व्याख्यान गुरुग्रन्थ-प्रदीप	॥)
श्रीकृष्णै रामगीता सटीक	-)
पारसभाग	२)
सांख्यकारिका तत्त्वबोधिनी	।=)
वैराग्यशतक	॥=)
वैराग्यप्रकाश	≡)
सांख्यतत्त्वसुबोधिनी सटीक	।)
भगवद्गीता नवल भाष्य	३॥)

पुस्तक मिलने का ठिकाना—

रायबहादुर मुंशी प्रयागनारायण भार्गव,

मालिक नवलकिशोर प्रेस—लखनऊ.